कहानी संग्रह

कनेर के फूल

हरेराम सिंह

अनुक्रम –

- ❖ कलिकाल
- ❖ पाकिस्तानी सिम
- ❖ झबरा कुत्ता
- ❖ सपने टूटे थे...
- ❖ कनेर के फूल
- ❖ मेरे पास आओ तो!
- ❖ राम के वारिस
- ❖ जय हिंद सर

इसक कहानी संग्रह के सारे पात्र व घटनाएँ काल्पिनिक हैं, स्थान का संयोग महज कहानी–कला का एक अंग मात्र है– इसे सत्य न माना जाए!

कलिकाल

- हरेराम सिंह

जीवन की सुस्त रफ्तारों को उसने और सुस्त कर दिया था। जीवन में उल्लास की जगह जहर मिला दिया था। हमेषा काम–काम की रट लगाता और काम करते–करते जब स्टॉफ थककर चुर हो जाते, तब उसका दमित मन खुष हो उठता– लगता उसके पृतकों की आत्मा में कुछ समय के लिए ठंढ़क पहुँची और अन्दर–अन्दर माँ को याद करता। जिस माँ से वह अतिषय प्यार करता था; उसकी माँ ने उसके लिए क्या नहीं की? सारें चमरौने में उसकी माँ बदनाम हो गई थी। बाप बेलुरा था। घर में फूटी कौड़ी तक नहीं थी। ताड़ के नीचे झोपड़ी बना कर रहती थी। कितना हल्ला–गुल्ला करने पर बुधुआ के बाप ने मिट्टी का घर बनाया। जब घर बनकर तैयार हुआ– बुधुआ उछल–उछलकर आंगन से दरवाजे तक जाता और दरवाजे से आंगन तक। फिर भी न जाने क्यों बुधुआ का बाप महेष राम उदास था? मिट्टी का घर पर जो छप्पर लगे थे, उसे खुद महेष ने बनाया था, किन्तु छाजने के लिए उसके पास बाँस नहीं थे। बुधुआ की माँ तितिलिया बुबआने गई थी और बाबुसाहब के गोड़ पर गिरकर कही थी – ''मालिक मेरे चार बच्चें हैं; उसमें छोटका बुधुआ आप ही का खून है। यह बात सारा चमरौना जानता है। तीन महेष के। वे सब बिन घर के कैसे रहेंगे? कितना कहने पर तो बुधुआ का बाप मिट्टी के घर के बनाने के लिए तैयार हुआ। वरना वह तो मुझसे बोलना ही छोड़ दिया था। मालिक, आप ही मेरे एक सहारा हैं? बाँस के लिए किसके दरवाजे जाऊँ? जात–बिरादर तो कबके बेगाने हो गए!''

हुल्लास बाबु तिलिलिया के बात सुन रहे थे। केवल ''हूँ' 'हाँ' कर रहे थे, ताकि कोई सुन न ले। भोर का समय था। कोई पहर भर समय अभी सूरज उगने में शेष था। वह बुधुआ और उसके तीनों भाईयों सुधुआ, महुआ और खदेरन को सोते छोड़ चुपके से बाबुसाहब के दालान पर आई थी। उस रात महेष राम घर पर नहीं था। बगल के गाँव सोनीपुर में न्योता पठाने गया था। तितिलिया उसके न होने की वजह से निष्चिंत थी। फिर भी वह हड़बड़ में थी। सूरज निकलने से पहले घर निकल जाना चाहती थी; ताकि कोई देख न ले। उल्लास सिंह ने कहा –:'' ठीक है, जाओ। कल पछेआरी बाग में जो बाँस की कोठी है, उससे जितना बाँस की जरूरत हो महेष काट ले। लेकिन अगर कोई मेरे घर से टोका–टोकी करे तो उससे मुँह मत लगना। कहना हुल्लास ठाकुर बोले हैं। ठीक है, भिनुसार होने वाला है, घर जाओ!'' तितिलिया ज्यो दलान से बाहर निकलना चाही कि हुल्लास सिंह ने उसकी कमर में हाथ लगा दिया। तितिलिया मुस्कुराई पर अगले ही क्षण प्रतिकार भी की। ''छोड़िए, कोई देख लेगा। बुधुआ तो भूखे मर ही रहा है। क्या एक और जनमाकर उसे भी मारना है?'' न जाने क्यों हुल्लास को तितिलिया की यह बात कैसी तो लगी। और अगले पल उसकी कमर पर से स्वतः हाथ हट गया।

तितिलिया अपने घर पर थी। सुधुआ जग गया था। शेष तीनों अभी सो रहे थे। बगल में रामाषीष सिंह महतो का घर था। वे बीस बीघे जमीन के काष्तकार थे। जाति के कोयरी। कोयराना में उनका एक अलग रूतबा था। उनके मित्र थे ढ़ल्लन यादव। पिछले पंचायत में वे मुखिया से जीते थे। तब

से राजपुताने में कोयराने के प्रति सम्मान और कुछ जलन दोनों बढ़ गए थे। हुल्लास सिंह ठाकुर जहाँ रामाषीष महतो से जलते थे, वहीं उनके चचेरा भाई रणविजय ठाकुर इससे खुष थे। उनका कहना था कि ''पंचायती राज ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान कर दिया है। वे जेएनयू के विद्यार्थी रह चुके थे। किंतु आधी पढ़ाई छोड़कर ही वे गाँव कौरूषपुर में आ गए थे। कौरूषपुर गोरखपुर के नीचे बसा गाँव है। उनकी माँ बलियाँ की हैं। वे हमेषा तितिलिया पर स्नेह बरसाती हैं। तितिलिया अपनी बकरियों को आंगन से बाहर निकाल कर नीम के बिरवे के पास बाँध दी। वहीं खप्पड़ में भूसा–पानी सानकर घर बुहारने लगी। सुधुआ माँ के पीछे–पीछे चल रहा था। वह कह रहा था–''बाबु कब आऐंगे सोनीपुर से मईया!'' तितिलिया ने कहा –''गए हैं तो आएँगे ही। क्यों, क्या फिकिर लगी है बाबू को? तितिलिया जान रही थी सुधुआ के मन की बात कि सुधुआ किस चक्कर में अपने बाप के बारे में पूछ रहा है। बुनिया–पुरी उसे बहुत पसंद है। वह जानता है कि उसके बाबू जब लौटेंगें बुनिया–पुरी साथ लेकर लौटेंगे। तब वह जी भर खाएगा!'' तितिलिया जानती है कि रूखी–सुखी जो भी मिलते हैं, उसके बच्चे खाकर सो जाते हैं। इसलिए उनकी देह पुष्ट नहीं हो पाती। पेट हाड़ी बन जाता है और पैर सूखी ककड़ी!

अपने बिटवा के चेहरे को तितिलिया ने जब देखा तो उसका चेहरा कुछ पीला जान पड़ा। उसका बाप भी कौन बड़ा वीरकुंवर सिंह था कि बेटा कुंवर सिंह पैदा होता। हाँ, बुधुआ जब पैदा हुआ था तो निष्चित ही तीनों से मोट–झोंट था। पर वह लंबा नहीं था। तेरह का वह भी हो चुका था। उसे पढ़ाने के खर्चे चुपके से हुल्लास ठाकुर अपने घर के बनिहार रमुआ से भेजवाते थे। रमुआ महेष का मित्र बन गया था। दोनों खूब गांजा पीते थे। रमुआ गंजा पी जब हांफने लगता तो लगता अब मरेगा कि तब? पर, आदत से बाज नहीं आता। चिलम पर चिलम चढ़ा देता है– बम–बम भोले का नाम लेकर। उसकी मेहरी पिछले साल मर गई। पेट से थी। धान काटने गई थी। सर्प ने डंस लिया। तब से रमुआ रंडुआ हो गया है। घर की जमीन दस कट्ठे थी। उसे ढल्लन यादव को उसने बेच दिया। अब वह भी हुल्लास ठाकुर के दालान के पास एक चौकी लगाकर बाहर ही रहता है। लेकिन, उसका कोई ठीकाना नहीं। वह अब मजदूरी भी गाँव जवार जाकर करने लगा है। सप्ताह में सोमवार और बुधवार दो दिन हुलास ठाकुर के यहाँ रहता है। यही तय हुआ है दोनों के बीच। इधर हुलास ठाकुर के दोनों बेटे जीवन सिंह और नाहर सिंह पटना में पढ़ते हैं। यही होली–दीवाली में कभी–कभार आते हैं। वे भी बुधुआ की माँ से परिचित हैं। वे उन्हें काकी कहकर बुलाते हैं। उन दोनों पर माँ की छाया गई है। उन्हीं की पुरानी किताबों को बुधुआ पढ़कर इस साल मैट्रिक पास किया सेकेण्ड डीविजन से। बुधुआ चमरौने का पहला लड़का है, जो मैट्रिक उतीर्ण है। इसलिए चमरौने में उसके प्रति इज्जत थोड़ी बढ़ी है। नये लोग पुरानी बातों को जानते भी नहीं और पुराने लोग भी अपने को इस चक्कर से दूर रखना चाहते हैं कि कौन किसका बेटा है क्या मतलब? महेष राम अब बीमार रहने लगा है। उसका बड़ा बेटा सुधुआ मुंबई चला गया है। महुआ आठवीं तक पढ़ने के बाद पढ़ाई छोड़ दिया और खदेरना पट्टे पर खेत ले रखा है। अगले साल सुधुआ की शादी हाने वाली है। तितिलिया अंदर से खुष है। बुधुआ ग्यारहवीं में नामांकन ले लिया है। उसका घर अभी भी मिट्टी का है। उसी में एक कमरे में वह पढ़ता है; जिसमें बकरियाँ रात को बांधी जाती हैं। वह भी सोच रहा है कि अपने भईया

की शादी में अपने लिये नया कपड़ा बापू से कहकर सिलवाएगा। अब तक वह बाबुसाहेब के लड़कों का पुराना कपड़ा ही पहनते आया है। पर, करे भी क्या? अंदर दुःख होता है; किंतु कोई चारा नहीं। वह बड़ा आदमी बनना चाहता है। इसीलिए वह मन लगाकर पढ़ता है। पर, किस्मत का मारा वह भी कम नहीं है। इतनी मेहनत के बावजूद भी इंटरमीडिएट थर्ड डीविजन से उत्तीर्ण हुआ। पर, उसका शरीर स्वस्थ्य रहा है। वह रविवार के दिन बाबु साहेब के पंपसेट पर रहता है और उनकी फसलों को पटाता है। बाबु साहेब के लिए जब घर से खाना आता है तो उसी में कुछ रोटियाँ अधिक दे दी जाती हैं। बुधुआ के लिए वहीं लगी मड़इया में एल्मुनियम का छीपा व लोटा है। वह बाबूसाहेब को खाना खिलाकर खुद खाता है। उसे घी में सनी रोटियाँ अचार व लौकी की तरकारी बहुत पसंद है। इस बात को बाबु हुलास अच्छी तरह जानते है। अतएव जब भी उनके लिए रोटियाँ आती हैं – कम खाने का बहाना कर या भूख नहीं है आदि कहकर दो रोटियाँ थाली में ही छोड़ देते हैं और बुधुआ को कहते हैं – '' बच्चा इसे भी खा जाना।'' इसका प्रतिफल है कि अपने और भाईयों से बुधुआ काला होने के बाद भी चिकना व सुन्दर दिखता है। बाबु साहेब भूगोल में स्नातक हैं। उनसे बुधुआ की हमेषा बातचीत होती है। वे जमीन पर सुन्दर भारत का नक्षा बनाकर भारत के भौगोलिक स्थिति के बारे में बुधुआ को जानकारी देते हैं। इंटरमीडिएट में एक विषय के तौर पर उन्हीं की प्रेरणा से भूगोल विषय लिया है। वह भी उन्हीं की तरह सुन्दर भारत का मानचित्र बनाना सिख गया है। जब कभी तितिलिया अपने बुधुआ को बाबुसाहेब के साथ देखती है, तो उसे आत्मिक शांति मिलती है। लेकिन महेष राम अपने बच्चे को हुल्लास ठाकुर से बातचीत करते देखता हे तो उसकी आंखें लाल–पीली होने लगती हैं। लेकिन, उसकी इतनी ताकत कहाँ कि बाबु साहेब को कहीं कुछ बोले। बस, इतना भर बुधुआ को बोलता है –''केवल बातें ही करोगे तो रात भर में फसलें पानी से पट नहीं पाएँगी और इसी काम के लिए कल भी दिन खपाना पड़ेगा। देखेंगे नहीं की कलक्टर बनोगे पढ़कर। अपने बिरादर में कोई बना है कलक्टर की तू बनेगा?''

।। 2 ।।

''कुछ ही दिनों में सब कुछ ठीक हो जाएगा।'' आष्वासन देने के साथ–साथ उसने मेरी आँखों में न जाने क्या देखने की कोषिष की; फिर अपनी ऊंगलियों से बाँह पर हल्का दबाव बनाए और चले गए। और मैं बिल्कुल उस वक्त यह समझ नहीं पाई कि वे इनती जल्दी चले भी जाएँगे। आँखों पर यकीन नहीं हुआ। दिल यह स्वीकार भी नहीं कर रहा था कि दिलजीत भाईजान अभी–अभी घर से बाहर निकल गए होंगे। लेकिन यही सच था। कुछ दिन माँ और पिता साथ रहे थे, किंतु वे भी चले गए थे। मैं घर में अकेली थी। पिता जी कुछ दिनों के लिए अपने साथ मुझे रखना चाहते थे। किंतु, बच्चों की पढ़ाई थी; बाधित होती। इसलिए मैं जाना उचित नहीं समझी।

ऋतंभर की बाँहों में गोली लगी थी। दोनों हाथ बेकार के हो गए थे। उसे जब–जब देखती अंदर से टूट जाती। पर, कर भी क्या सकती थी। ऋतंभर उसूलों के पक्के आदमी थे। रत्तीभर भी इधर से उधर होना उनके वष में नहीं था। गाँव के किसानों व मजदूरों की हालात से वे काफी दुखित रहते थे। उनके लिए अपना सर्वष्व जीवन होम कर देने का निर्णय भी उनका ही था। घर की

माली हालत उतनी अच्छी नहीं थी; फिर भी दिन रात मिहनत करके बाल–बच्चों की परवरिष करते। मैं भी उनका साथ दिये जा रही थी। वे जीवन से संतुष्ट थे। मुझे पाने के बाद उनमें लगता दुगुनी जान आ गई थी। वे अपने सपनों की दुनिया बनाना चाहते थे। लेकिन, वे कभी सोचे भी नहीं थे कि आज अनके साथ जो भी हुआ था, उसके पीछे के कारणों में वे स्वयं जिम्मेवार थे। किसी पर ज्यादा विष्वास उनकी कमजोरी थी। गरीबों में उन्हें केवल दुःख दिखता, जिससे उबारना वे अपने जीवन के मकसद समझते। और इसे पूरा करने के लिए एक छोटा–सा संगठन भी बना लिए थे। जिसके सदस्यों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रही थी। वे उससे काफी उत्साहित थे। आए दिन प्रखण्डों पर धरने प्रदर्षन होते। किसानों व मजदूरों की मांगों को पूरा करने के लिए उनके साथी– गण क्रांतिकारी नारों के साथ ब्लॉक का घेराव किये थे। बीडीओ संजय पासवान की कानों पर जूं तक नहीं रेंग रही थी। ऋतंभर भी उसी में नारे लगा रहे थे –''काराकाट के बीडीओ होष में आओ'' और कुछ क्षण के लिए लगा इन नारों के बोल ने धरती और आसमान को अपने गगनबेधी उद्घोष से हिलाकर रख दिये। आसमान मे चिड़ियाँ फड़फड़ाने लगी। पेड़ के पत्ते कुछ क्षण डोलने के बाद लगा हमेषा के लिए स्थिर हो गए। तभी ऋतंभर भीड़ को संबोधन करते हुए कहा –'' साथियों, सरकार हम किसानों के लिए डीजल अनुदान देती है। किंतु इसका सच्चा लाभ हमें नहीं मिलता। जबकि हम किसान हैं। खेती करते हैं। और खेती पर ही जीते हैं। पर हमारा नाम किसानों की पंजी में नहीं है। किसानों की पंजी में तो उनका नाम है जो कभी किसान रहे ही नहीं है। बलवंत भूमिहार दो सौ बीधे के काष्तकार हैं। वे खेत घूमने तक नहीं जाते । कुदाल कैसा होता है, देखे भी होंगें कि नहीं। शक है। पर, सरकार उन्हें किसान मानती है। उनके मित्र है, भूमि सिंह मौआर! वे भी पांच सौ बीघे की जोत वाले हैं। उन्हें भी सरकार किसान समझती है। अपने ही गाँव के फूलचंद सिंह कुषवाहा साठ बीघे के काष्तकार हैं। वे भी खेती अपने हाथों कम ही करते हैं। किंतु सरकार उन्हें भी किसान समझती है। वो तो कुछ हद तक ठीक है। लेकिन, शेष लोग? हम तो बिल्कुल छोटे किसान हैं। हम सभी के पास दो–से–तीन बीघे जमीन है। किसी तरह गुजारा करने लायक। ओला वृष्टि से हमारी सारी फसलें बरबाद हो गई हैं। खाता–प्लॉट लिखकर अंचल कार्यालय में जमा भी हम करवाए थे। किंतु अनुदान के लिए जो लिस्ट जारी हुई थी, उसमें हम सभी का कहीं कोई नाम नहीं है। नाम है तो ..... बलवंत भूमिहार का, भूमि सिंह मौआर का, फूलचंद सिंह कुषवाहा का, अयोध्या यादव का।'' कुछ क्षण ऋतंभर सांस लेते हुए अपनी अंगुलियों को भीड़ की तरफ करते हुए कहा –''यह सारा का सारा ना इंसाफी है। यहाँ घोर धांधली हुई है। यह धांधली अब नहीं चलेगी।'' तबतक भीड़ खमखमा गई और चिल्लाने लगी –''यह धांधली नहीं चलेगी'' ''नहीं चलेगी, नहीं चलेगी'' उस प्रदर्षन का बीडीओ और सीओ पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। संध्या चार बजे दोनों अपनी अपनी गाड़ी में बैठे और चलते बने। और इधर ऋतंभर के साथी ''मुर्दाबाद'' के नारे लगाते रहे। कुछ क्षण के लिए प्रदर्षनकारियों को लगा वे पटुआ गए हों जैसे। शाम का सूरज डूबने वाला था। सारे प्रदर्षनकारी आपस में कुछ गिटिर–पिटर कर रहे थे। लेकिन क्या कह रहे थे। स्पष्ट सुनाई नहीं दे रही थी। तभी ऋतंभर का साथी संजय ने कहा –''साथियों, हताष होने की जरूरत नहीं। ऐसा नहीं कि हम बिल्कुल हार गए या हमारे प्रदर्षन का प्रभाव प्रखण्ड के अधिकारियों पर नहीं पड़ा है। पड़ा है; किन्तु वे दिखाना चाहते हैं कि हम बेअसर हैं। हमारे जिम्मे और काम है।''

अंजय अच्छा मित्र है, ऋतंभर का। दोनों के बीच खूब पटती है। वह जाति का मल्लाह है और ऋतंभर कुर्मी। पर, जब से उन्होंने वर्ग संघर्ष को समझा है; तब से दोनों के बीच जाति की दीवारें बिल्कुल टूट चुकी हैं। अंजय ने ऋतंभर से कहा –'' साथी! यहाँ का बीडीओ संजय पासवान जाति का दुसाध है। पर उसका वर्ग अब बदल चुका है। उसे दलित या सर्वहारा समझना भूल है। जाति के अनुसार वर्ग क्रम में वह शूद्र निष्चित है; किंतु वर्ग उसका निम्न मध्य वर्गीय नहीं है। इसलिए हम इंडीयन लोग कई बार गच्चा खा जाते हैं, उसे अपना समझकर। वह अब लुम्पेन है।''

ऋतंभर ने कहा –''तुम ठीक कहते हो अंजय। भारत में वर्गीय चेतना आकार नहीं ले पा रही है। उसके पीछे जो मुख्य कारण कार्य कर रहा होता है। वह है – वर्ण और जाति का स्थायित्व प्रदान होना ।'' शेष प्रदर्षन कारी ब्लॉक से खिसक पड़े थे। हल्का अंधेरा हो चला था। दोनों वहीं एक फूस की मड़ई मे गए। दो कप चाय की मांग की। चाय वाला बहुत बुढ़ा था। उसके हाथ हल्के कांप रहे थे। लालटेन की रोषनी में उसके हाथ का कांपना स्पष्ट नजर आ रहा था। वहीं कोई दस मिनट उस बुढ़े ने इंतजार करने को कहा। फिर चाय बनाकर दोनों साथियों के हाथ में थमाया। चाय की खुष्बू दूर से ही आ रही थी। चाय पीते–पीते अंजय ने कहा –''कामरेड! एक बात बोलू।'' ऋतंभर ने कहा –'' बोलो!'' ''हमारे कामरेड स्कूल चलाते हैं। लेकिन यह दुर्भाग्य है कि वे केवल विष्व चरित्रों में से केवल विदेषी चरित्रों को उदाहरण बना अपने चिंतन को मूर्त रूप देने की कोषिष करते हैं। जिस कारण जितना द्रूत गति से हमारा विचार यानी मार्क्स का विचार यहाँ की जनता के पास पहुँचना चाहिए; पहुँच नहीं पाता है।''

इस बार अंजय चाय की चुस्की ले रहा था। ऋतंभर की होठ चाय की प्याले से आजाद थी। उसने कहा –'' ठीक ही कर रहे हो, अंजय! इसी लुंपेन को समझने के लिए न जाने कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। लेकिन लोग थोड़ा से ध्यान दे तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। बिहार के ही जगदेव प्रसाद अब भारत लेलिन भी, की हत्या कैसे हो गई? सोचनीय है। वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं थे। लेकिन अपने क्रांतिकारी विचारों व कार्यों से कम्युनिस्ट से कम नहीं थे। लेकिन एक लुम्पेन के चक्कर में पड़कर दिल्ली गए। इंदिरा गाँधी से मिले। इंदिरा गाँधी उनसे नाराज हो गईं। और बाद में जगदेव के साथ बहुत बुरा हुआ।''

''हाँ, हाँ ठीक कह रहे हो, ऋतंभर। यहीं कोई जादव–मौर्य था। लोग उसे मौर्य व दलित समझने के भूल कर देते हैं। किंतु वह जादव था और कांग्रेसी! उसका पूरा–पूरा नाम क्या था?''

''अरे! छोड़ो उसका नाम। ऐसे ही लुम्पेनों की वहज से हम कितनी बार असफल हो गए।''

''अच्छा ठीक है, अब चला जाए गाँव।'' अंजय ने कहा और अपने पॉकेट से दुआर के दो नोट चाय वाले बुढ़े को देने लगा। ऋतंभर ने मना किया। पर अंजय ने कहा –''छोड़ो याद, तुम कल पिला देना। संझौली में कल सभा है। वहीं हम मिलेंगे।'' ''ठीक है मेरे मित्र, मेरे कामरेड! कल फिर मिलते हैं।'' ''लाल सलाम''

सोन नदी का सुरम्य तट, मछुआरे कहीं–कहीं जाल फेंक रहे थे। तो कहीं–कहीं उनके बच्चे बालू की पींडिका बना खेल रहे थे। यह सब देखकर बुधुआ अति प्रसन्न हुआ। उसी तट के किनारे मुष्किलन दो–सौ मीटर पर हाई–स्कूल का आहाता था। उसके मुख्य द्वार पर दोनों तरफ एक–एक अषोक–वृक्ष! हल्के पीले यानी गेरूए रंग से स्कूल की पुताई बहुत ही आकर्षक लग रही थी। पर, कहीं–कहीं काई की हरितिमा स्कूल की सुंदरता में चार चाँद लगाने में बाधक बन रही थी। स्कूल के षिक्षकों में और ग्रामीणों में यह पहले से चर्चा चल रही थी कि यहाँ कोई दलित हेडमास्टर बनकर आ रहा है। बड़ा कड़ैल आदमी है। पर, पूर्व से स्कूल में कार्य कर रहे संस्कृत षिक्षक कृष्णा यादव का मानना था कि ''वह आएगा तो हड्डी भी नहीं बची रहेगी।'' लोग कृष्णा यादव की बात समझ नहीं पाए कि वे क्या कह रहे हैं? वे हल्का–हल्का मुस्कुरा रहे थे। बुधुआ अब बुधुआ नहीं रह गया था। वह बुद्धू हो गया था। बुधुआ से बुद्धू बनने की एक रोचक कहानी है। वह कहानी उसके गाँव से जुड़ी है। हुल्लास ठाकुर ने उसका नाम गाँव के प्राथमिक विद्यालय में लिखवाया था। तब लोग समझ नहीं पाए थे कि माजरा क्या है? हुल्लास तब नौजवान से थे। समाजिक गतिविधियों में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। बुधुआ का प्राथमिक–स्कूल में नामांकन कराना उनका सामाजिक कार्य ही था। गाँव के ही पाठषाला के प्रधानाध्यापक मंजुल मिश्रा थे। वे न जाने क्यों दलितों को पढ़ना देखकर नाखुस रहते थे। और उन्होंने ही बुधुआ को स्कूल की संचिका में बुद्धू बना दिया था। लेकिन उन्हें क्या पता कि बुधुआ बुद्धू न बनकर बुद्धू का बाप बन जाएगा। सोन नदी के तट पर बुद्धू राम टहलने गया तो दो किलो मछली खरीदने गया। पर उसे लगा कि मछुआरों ने उससे ज्यादा पैसा वसूल लिया है, फिर भी उसने मन को धीरज बंधाया कि नया जानकर मछुआरों ने उसे काटा है। वरना एक किलो मछली, वह भी गरई सौ के बदले एक–अस्सी में नहीं मिलती। बुधुआ के लिए स्कूल का वह पहला दिन था। नासिराबाद में उसकी पोस्टिंग बड़ी ही मषक्कत के बाद हुई थी। इसके पहले वह तीन जगहों पर पहले भी काम कर चुका है। लेकिन, उसे अब पहले से ज्यादा सुकून का एहसास हो रहा है। वजह अबतक वह असिस्टेंट टीचर के रूप में बहाल था और नासिराबाद में हेडमास्टर बनकर आया है। दूसरा कारण यह भी है कि जैसा कि लोग बताते हैं – वह जहाँ भी रहा है, अबतक वह बड़ों का झोला ही ढ़ोते आया है – बड़ों यानी भूमिहार–ठाकुरों की। इससे वह तंग आ गया था। पर, उनलोगों से वह कुछ चतुराई भी सीख लिया है। लेकिन, सच है कि उस चतुराई का प्रयोग वह ज्यादा दलितों व पिछड़ों पर ही करता है। क्योंकि उसे अभी भी डर है कि भूमिहार–ठाकुरों के आगे चतुराई में वह जीत नहीं सकता। इसलिए वह सबसे पहले हर नये अवजार का प्रयोग उन षिक्षकों पर करता है, जो समाज के नीचले तबके से संबंध रखते हैं। उसे अभी डर है कि बड़ों पर प्रयोग करेगा तो उसमें वे लोग धांस देंगे। इसलिए मौके दर मौके उन्हें खुष करने से नहीं चुकता। वीर कुंवर सिंह जयंती बड़ी धूम–धाम से मनवाता है। उसमें अगल बगल से भाजपा नेताओं को बुलाकर सम्मानित करता है; ताकि उनकी छत्रछाया बनी रहे।'' यही पर आकर बुधुआ फेल कर जाता है।'' उसकी बिरादरी के षिक्षक ही ऋतंभरम् से बता रहे थे। हालाँकि ऋतंभर का गाँव बुधुआ के स्कूल से दस किलोमीटर दूर है। उस षिक्षक ने ऋतंभर से यह बताया कि ''वह भी जाति का चमड़िया है और बुधुआ भी। पर बुधुआ उसे

बड़ा तंग करता है। यही कोई महीने पहले की बात है। बुधुआ आठ बजे रात्रि को मोहन सर के पास फोन कर दिया। और फोन पर ही उसे हड़काने–धमकाने लगा। वह भी इतना कि मोहन एक षिक्षक होने के बाद भी चुप रहा। चूँकि उसके अंडर में वह काम जो करना था।'' अगले दिन मोहन बिन मुँह हाथ धोये ही साईकल से नासिराबाद पहुँचा वह भी बूद्धू महोदय के डेरे पर। और बूद्धू महोदय ने उससे अबतक के हिसाब–किताब लिया। फिर जोड़ घटाव करने के बाद मालूम हुआ कि मात्र पच्चीस रूपये के अंतर की वजह बुधुआ ने उन्हें इतना परेषान किया। जबकि बुधुआ को वह पहले ही रूपये दे चुके थे। और बुधुआ भूल गया था कि मोहना ने उसे पैसे दे दिए हैं। चूँकि मोहन सर को और के बीच बुद्धू मोहना ही कहता था। जैसे बड़े बाभन–ठाकुर बोलते हैं। बुधुआ नये जमाने का बाभन–ठाकुर ही था। इसे बहुत कमलोग जानते थे!

ऋतंभर से मोहन सर कहते–कहते रोने लगे थे। वे काराकाट क्षेत्र के बेलवाई के पास के रहने वाले थे। उनकी शादी हुए कोई तीन साल हुए थे। एक बच्चा था। वह लू लगने से बीमार हो गया था। वे बुद्धू चमड़िया से छुट्टी मांगने गए; पर बुद्धू ने साफ मना कर दिया यह कहते हुए कि –''घर ही देखना है तो नौकरी से रिजाइन दे दो। क्यों आते हैं–स्कूल। सरकार आपको गिफ्ट में पैसे देती है क्या?'' मोहन सर बता रहे थे कि उस वक्त वह ऐसे बोल रहा था; जैसे वह अपने पौकेट से उसे पैसा देता है और छुट्टियाँ कोई भी हो। उसे लगा बुधुआ के सामने वह भीखारी बन गया है और उसे भीखरी जान बुधुआ कुत्ते की तरह दुरदुरा रहा है। फिर भी मोहन को न जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि बुद्धू चमड़िया या उसी के विरादरी का है। इसलिए वह उनका प्रतिकार नहीं कर पा रहा था। उसके गाँव के बूढ़े–बुजुर्ग बताते हैं कि –'बेटा, अच्छा है कि तेरा हेडमास्टर एक दलित ही है। वरना सवर्ण होता तो और अधिक तंग करता।'' मोहन सर यह समझ नहीं पा रहे थे कि वह बुजुर्गों की समझ को सही मानकर चले कि उसके साथ क्या हो रहा है? इसके आधार पर बुधुआ के बारें में निर्णय ले। गोड़ारी चाय की दूकान पर ऋतंभर जी और मोहन सर एक साथ चाय पीए और दोनों साईकल पर सवार होकर एक ही साथ घर चल पड़े। चूँकि ऋतंभर जी का गाँव बीच ही रास्ते में पड़ता था– उससे कोई पाँच किलोमीटर मोहन सर का गाँव था– बाई डीहरी। रास्ते में चलते–चलते घर–परिवार की बहुत सारी बातें हुई। जब ऋतंभर गाँव के नजदीक आए तो उनके मुंह से अनयास निकल गया –''ळवदक छपहीज मोहन सर''। ''लाल सलाम ऋतंभर जी।'' मोहन सर के मुँह से निकला यह शब्द ऋतंभर के लिए न जाने क्यों नया–सा लगा। लेकिन उनमें एक नई उमंग भर दी। उनकी आँखें खिल गईं। वे विस्मित थे कि मोहन सर उसके बारें में जानते हैं। फिर प्रतिउत्तर में हाथ ऊपर उठाते हुए, मुट्ठी बाँधकर उन्होंने भी कहा –''लाल सलाम साथी।'' मोहन सर मुस्कुराते हुए धूल भरी पगड़ंड़ियों पर सरपट निकल पड़े। पीछे से गर्दा उनका पीछा करते गए। पर वे हार मानने वाले नहीं थे। आखिर गाँव पर पहुँच ही गए। जाते–जाते बेटे को देखा। बुखर कुछ कम हुआ था। वे कुछ निष्चिंत हुए। पत्नी को बुलाकर कल की दवा हाथ में थमाये।

लो मैं हार गया! इतने ही से तुमलोग जैसे दुष्ट अगर दुष्टता से बाज आ जाऐंगे; तो हारने को अपना सौभाग्य समझूँगा! लेकिन तुमलोग सुधरोगे नहीं! अंत अंत तक शोषण करना, सरकारी धन को लूटना और वैसे सरकारी कर्मचारी जो तुम्हारे अंदर काम कर रहे हैं; उन्हें सताना नहीं छोड़ोगे। तुम्हारी जाति भी वैसी ही है! जो पहले भूमिहार–ब्राह्मणों की बनिहारी करती थी; जी हुजूरी तुम्हारे खून में है और आज भी उसे करना अपना सौभाग्य ही समझते हो। तुमलोगों को छोड़ने का मतलब, गुण्डों को बढ़ावा देना है। तुम्हें मारने का मतलब; गंदगी को साफ करना है। इसलिए नहीं कि तुम स्वयं को दलित कहते हो! दलित कहने और होने में बहुत अंतर है। तुमलोग दलित हो ही नहीं; केवल दलित के नाम पर फसल काट रहे हो। तुम सवर्णों से भी गए गुजरे हो; जो जनता को कभी कष्ट देते थे। मार्क्सवादी भाषा में तुम्हारे ही जैसे लोगों के लिए लंपट सर्वहारा जैसा शब्द बना है। आखिर तुम्हारे जैसे लोगों को कोई भला किस शब्द से नवाजे! कम्यूनिस्ट जानते हैं कि तुम अपने वर्ग के साथ दगाबाजी करते आए हो। और तुम्हें देखकर ऐसा लगता है– आगे भी तुम ऐसा ही करते रहोगे। वजह, तुम्हें धन की लालच बढ़ गई है। किसी भी तरह, किसी भी हद तक जाकर, तुम पूँजी अपना बनाना चाहोगे। तुम पहले राजपूतों के यहाँ पानी ढ़ोने का काम करते थे। आज भी कंधों पर उनकी डोली ढ़ोवेंगे! तुम मुझे यह भी कहोगे कि यह सब मैं गुस्से से कह रहा हूँ। हाँ, गोस्से में कह रहा हूँ। लेकिन तुम्हरी वर्ग को पहचान गया हूँ। तुम्हारे लिए लड़ना, तुम्हारा पक्ष लेना हमारी भूल थी। और यह भूल मैं दुबारा नहीं करूगाँ। इसलिए इसे लिख रहा हूँ। ताकि, अगली पीढ़ी धोखा न खाए। मैं धोखा खा गया, बस अपने तक ही इसे सीमित करना चाहता हूँ। लेकिन इस कथा को जितनी पीढ़ियाँ जानेंगी; उतनी पीढ़ी कम से कम सतर्क तो रहेंगी। लिखता क्यों है कोई, इसीलिए न; कि लोग समझेंगे। जो जिस वर्ग का रहेगा, उस वर्ग का लाभ पहुँचाता है। मैं भी अपने वर्ग को सतर्क करना चाहता हूँ। साहित्य लिखने का अभिप्राय मेरा यही है। वरना, मैं औरों की तरह पैसा कमाना, घर बनाना, गाड़ी खरीदना शुरू नहीं कर देता! पर नहीं किया, क्योंकि मुझे लगा यह भी कम महत्वपूर्ण काम नहीं है। जो मैं करना चाहता हूँ। मेरे दादा भी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्धान थे। वे भी आजीवन संस्कृत साहित्य की सेवा करते रहे। मैं भी उस परंपरा को आगे बढ़ा रहा हूँ। उनमें मुझसे अंतर है; तो बस इतना ही कि वे संस्कृत में लिखते थे और मैं हिन्दी में। संस्कृत एक अच्छी भाषा है; लेकिन आम जनता की भाषा वह बनने से रही! लेकिन मेरे दादा अगर जीवित रहते तो उन्हें भी अपनी कहानी सुनाता। और वे भी निष्चित ही संस्कृत श्लोकों में तुम्हारे वर्गीय चरित्र को दिखाते। इंसान धोखा बस इसलिए खाता है कि वह वर्गीय–चरित्र को सही–सही और सही समय पर पहचान नहीं पाता। यदि पहचान कर ले, तो कई समस्याओं से स्वयं एवं स्वयं के समाज को बचा ले।

ऋतंभर यह कहते–कहते लगा रोने लगेंगें। पर रो नहीं पाए। न ही उनकी आँखें पानी से भर आयीं। उनके घर का एक वसूल है – वह यह कि जब बिना वजह किसी दूसरे की गलतियों की वजह आँख में आँसू आ जाएँ तो; वे लोग अपने दुष्मन को छोड़ते नहीं। क्योंकि आँसू की एक–एक बूँद किसी मोती से कम नहीं! और अभी भी ऋतंभर एक अनहोनी को टाल रहे थे; वह चाहते थे कि टल जाए। किसी को मौका देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। पर, भगवान को भी कुछ दूसरा ही मंजूर था। यह अलग बात है कि ऋतंभर को भगवान पर भरोसा नहीं था। और वे भगवान के भरोसे कुछ

हासिल भी नहीं कर पा सकते थे। बुधुआ जो अब किसी स्कूल का हेडमास्टर था। उसी में ऋतंभर काम करते थे –षिक्षक के रूप में। राजनीति करना छोड़ दिए थे। बाल–बच्चों के लिए रोटी जरूरी थी। इसलिए अपना कर्त्तव्य समझ वह राजनीति से संन्यास ले लिए थे। लेकिन बुधुआ की दुष्टता से वे आए दिन षिकार होते। बुधुआ जाति का चमार था। और उसका चपरासी जाति का कहार। बुधुआ उ0प्र0 का था और चपरासी बिहार का। बुधुआ ने बिहार में जब से पैर रखा तब से मायावती का प्रचार–प्रसार करता। उपर से कहता कि वह स्कूल षिक्षक है; उसका राजनीति से कोई लेना देना नहीं। किंतु व्यवहार में वह ऐसा ही करता। वह विद्यालय के ही कोयरी षिक्षक मुरलीधरन से कहता कि षिक्षकों को तोड़कर रखो। मुझे तो बस एक महीना रहना है। तोड़ने के लिए तुम चपरासी और कलर्क से मिले रहो और षिक्षकों के पिछवाडे में बाँस धकेलते रहो। कलर्क के साथ रहोगे तो आए दिन दस–पाँच का मुनाफा होते रहेगा। षिक्षकों को साथ रहोगे तो क्या मिलेगा? खटाओ साले को दिन रात! और खुद मजा करो! अधिकतर षिक्षक उसकी दुष्टता को सहते रहते। किसी में दम नहीं था कि उसके खिलाफ कुछ बोले। एक मुसलमान षिक्षक था। वहीं कभी–कभी उसके खिलाफ आवाज उठाता। नाम था –इकबाल। पूरा नाम इकबाल अहमद। उसका चेहरा सूरज की ज्योति की तरह चमकता। लंबा चौड़ा गबरू जवान। वह भी पॉलिटिक्स का माहिर व्यक्ति था। स्कूल के और किसी स्टॉफ के पास बुधुआ का काट नहीं था। बुधुआ खुद पॉलिटिषियन था। अतः पॉलिटिषियन का काट पॉलिटिषियन ही हो सकता है। बाकी सब तो मरे हुए जानवर की तरह थे। कहे कसाई जब जिबह करके बैलों को उल्टा टांग देता है, ठीक उसी तरह और षिक्षक उल्टा जिबह करके बुधुआ द्वारा टांग दिए गए थे। अतः उनसे कुछ आषा करना मुर्खता ही थी। आप मरे हुए जानवर को हरी घास दिखा हरकत में नहीं कर सकते। फिर, वे तो षिक्षक थे। केवल दो चार किताबों के सहारे पूरा सर्विस बिता देते। मेरी बातों पर आपकों यकीन नहीं होगी। न होवे। पर हकीकत तो हकीकत होती है। एक षिक्षक पीरो के रहने वाले थे। नाम तो उनका किसी बादषाह से कम न था। वे स्वयं को काफी समझदार समझते। बुधुआ के चमचे के रूप में ख्यात थे। बुधुआ सौ–पचास रूपये खर्च कर देता कि वे जनाब खुषी से गिल–गिल होने लगते। उनकी एक आलमारी थी। जो षिक्षक सदन के एक कोने में पड़ी रहती थी। जनाब, उस दिन वह छुट्टी पर थे। अलमीरा में दीमकें लग गई थीं। और कई फाईलों को चटकर दी थी। उस अलमीरा में दो और षिक्षकों की संचिकाएँ हुआ करती थी। चपरासी जिसका नाम डोमन था; से षिक्षकों ने कहा कि आप इसे साफ कर दो। और उसने अलमीरा साफ कर दिया। अलमीरा साफ करने में ही उस जनाब की एक पुस्तक गुम हो गई; जो किसी आदम के जमाने की थी। जनाब उसके गम में पूरे पंद्रह दिनों तक बच्चों को नहीं पढ़ाए। बोलते– किताब ही नहीं तो पढ़ाऐंगे क्या? जब वह किताब किसी दूसरे अलमीरा में षिक्षक को मिली तब वे पढ़ाना शुरू किए। कुछ लोगों ने कहा कि उनकी यह किताब बीस सालों से उनके पास थी। उनक एक मात्र सहारा। किताब के गुम होने पर वे रो रहे थे। इसलिए नहीं कि वह किताब जो अंग्रेजी ट्रांसलेषन की थी, गुम हो गई थी! बल्कि इसलिए कि वे अब पढ़ाऐंगे क्या? वे पैसे के भी मखीचूस थे। उनसे कोई नई किताब खरीदी नहीं जा सकती थी। कलेजा निकल जाता। बच्चे कहते, उस किताब से अलग हटकर पूछने पर वे तुरंत गुस्सा जाते थे और उस बच्चे को टारगेट बना लेते थे। ठीक बुधुआ की तरह! जैसे कोई टीचर बुधुआ को हुक्म की हुकम–उदली कर देता तो बुधुआ समझता कि लोग उसे

चमार समझ हुकुम–उदली कर रहे हैं और उनसे बादला लेता! जबकि षिक्षक बार–बार कहते कि उसे चपरासी न कलर्क का काम वह न ले। पर, वह इससे बाज नहीं आता। उसके जेहन में मायावती के लोगों ने डाल दिया था कि तुम चमार हो। तुम्हारा कोई क्या बिगाड़ लेगा। ऐसा संविधान में बाबा साहब लिख कर गए हैं। और बुधुआ इसका भरपूर फायदा उठाता। वह तपाक यह धमकी देता कि हरिजन एक्ट बड़ी कड़ी एक्ट है। मुझसे लगने का मतलब समझ जाओ। आए दिन उसकी दुष्टता का षिकार एक–एक षिक्षक होते जा रहे थे। फिर भी बच्चों की पढ़ाई जारी थी। सरकारी स्कूल था; वह तो किसी तरह चलना ही था।

।। 5 ।।

पहले लोग जंगली जानवरों से डरते थे कि वे आऐंगे और खाते बनेंगे। इसलिए लोग एक दूसरे से मिलकर रहा करते थे कि अगर उनके हमले हों तो लोग मिलकर उनकी सामना करेंगे। लेकिन अबकी हाल ही दूसरी है। लोग जानवरों से कम हिंस्र–पशु जैसे इन्सानों से डरने लगे हैं। डरना कोई बुराई नहीं! डर से सामना नहीं करना, निष्चित ही बुराई है। स्कूल का हाल भी कुछ इसी तरह का हो गया था। सारे षिक्षक उस बूढ़े घाघ काले बुधुआ से डरने लगे थे। बुधुआ सताने में माहीर था। उसने प्रण ले लिया था कि रिटायरमेंट से पहले तक एक करोड़ रूपया बना लेना है। उसे याद है – बचपन में खाने के लिए वह कितना तड़पा है। वह थाली चाटने के ख्याल से घंटों बाबु–साहेब के द्वार पर बैठा रहता था। बाबू साहेब की छोड़न उसे भोजन के रूप में नसीब होता था। जब दाल–भात सब्जी पर घी का तड़का लगता, वह खुषी से नाच जाता। लेकिन उसके सौभाग्य में वहीं लिखा था? बाबू साहेब जब दाल–भात सब्जी छोड़ देते थे; बुधुआ उसे खाता। उसके लिए एक अलग कटोरी रखी गई थी। जिसमें बाबू साहेब खाने से बचे खाने को कुकुर की जगह बुधुआ के लिए छोड़ देते। बुधुआ बाबू साहेब की दाल की खुष्बू नाकों से तौलता। जब एक जानी–पहचानी खुष्बू घी की, नाकों तक पहुँचती; वह खाना को पहोट देता। कभी–कभी तो वह चाहता कि उसे ठकुरानी कुछ और खाना लाकर दें। पर, उसे कोई देता नहीं! न ही कोई पूछता कि बुधुआ भर पेट खा लिया न रे! उस रोज बुधुआ मन ही मन सोचता कि काष! वह भी अमीर बनता। और अमीर बनने की वहीं ख्वाहिष बुधुआ को षिक्षक बना दिया। और षिक्षक से प्रमोषन करके नासिराबाद में हेडमास्टर हो गया। वर्षों की अधूरी ख्वाब अभी पूरी नहीं हुई है। अभी भी गाँव पर झोंपड़ी का घर। बगल में दो ताड़ के वृक्ष खड़े हैं। उसकी माँ को मरे हुए कई बरस हो गये। उसका बाप भी कलपते कलपते मर गया। एक दिन खुद की आँखों से उसका बाप देखा कि उसकी मेहरी ठाकुर जी के बाँह में बिल्कुल नंगा सोई थी। जब ठाकुर जी ने बुधुआ के बाप को देखा तो गुस्सा गए। इतना कि वहीं नीम वृक्ष के एक टहनी से उसके बाप को लटकाकर इतना मारा कि बुधुआ का बाप खाट पकड़ लिया। और खाट पकड़ा तो फिर कभी उठा नहीं। उसके मरने के कुछ ही वर्षों बाद उसकी 'माई' भी मर गई। माँ के मरने के बाद निस्सहाय हो गया। अकेला टुवर! उसे आज भी याद है – ठाकुर जी कितना मानते थे! लेकिन अपने माँ–बाप को मरना उसे बहुत बुरा लगा। खासकर माँ का मरना! क्योंकि जबतक माँ थी; बुधुआ को ठाकुर जी पढ़ने के लिए कुछ पैसा भी दे देते थे; किंतु माँ के मरने के बाद उसे दूर–दूरा दिए!

आज नासिराबाद में नौकरी करते उसे दस साल हो गए। इससे पहले भी वह कई स्कलों में डिप्टी दे चुका है। वह चाहता है कि वह यही से रिटायर हो जाए। लेकिन उस चमार पर एक से एक आफतें आईं रहतीं हैं। इसलिए उसे हमेषा किसी न किसी के सहारे की जरूरत उसे पड़ती रहती हैं। इन दिनों वह एक अहीर के चक्कर में फँसा हुआ है। उसे न जाने क्यों अहीरों से घृणा रहती है। उसके गाँव के लोग कहते हैं – स्साला को घृणा रहना चाहिए थी भूमिहार से, तो उसे है '–यादव से। अहीरों ने उसका क्या बिगाड़ा है! उसकी माँ तो भूमिहार की रखैल थी। उसका बाप ठाकुर जी की मार से मरा। लेकिन वह तो भूमिहारों के साथ ही रहता है। कुछ लोगों का कहना हे कि जब से उ.प्र. में मायावती दलित–ब्राह्मण गठजोड़ की है, तभी से बुधुआ का स्वर्णों से लगाव बढ़ गया है। उन्हीं के साथ अब खता–पिता है। उन्हीं की तरह धोती कसता है। और उन्हीं की तरह अमीर बनना चाहता है। उन्हीं लोगों के साथ रहकर बुधुआ यह सीख गया कि सरकारी ओहदें पर आकर ईमानदार बनने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि ईमानदार बनने पर लाभ नही होंगे। पूरा जीवन फाकाकसी में ही गुजरा; अब गुजारा ठीक नहीं। इसलिए उसने प्रण लिया है कि टीचर कितना हूँ भी पाऊँ–पाऊँ करें –वह स्कूल के कलर्क व चपरासी को मिलाकर विद्यालय के सारी आमदनी का मालिक बन बैठेगा। इसलिए वह विद्यालय मैनेजिंग कमीटी के सदस्यों को समय–समय पर खाता–पिलाता है। उसमें से अधिकतर नासीराबाद के हैं। एक अमीरपुर के! अमीरपुर वाले तो बहुत सीधे–साधे गऊ हैं। उन्हें तो दुआ सलाम करके बुधुआ फुसला लेता है। और डकोमेन्ट्स पर साईन करा लेता है या कोई बील या कोई योजना पास करा लेता है। इस मामले में वह बड़ा चतुर है। उसके जीवन का एक–मात्र लक्ष्य अब पैसा कमाना रह गया है। दलित तो हैं ही। कोई कुछ करेगा तो देखा जाएगा! इस तरह वह अपने काम में सफल हो सकेगा। जब नासिराबाद में पहली दफा आया था तो बहुत उदास था; किंतु धीरे–धीरे सब कुछ ठीक हो गया। अब वह एक माननीय आदमी बन गया है। जब पीरो के पास वाले गाँव में षिक्षक था तो वहाँ के सवर्ण षिक्षक इससे बेगारी बरवाते। और बुधुआ करता। क्या करता? उसकी नियति में यही बस था। उस समय सोचता! पर आदमी के दिन हमेषा एक सा नहीं रहता। वे फिरते भी हैं। सो बुधुआ के दिन फिर गए। उसके अपने तीनों लड़के को ऊँची तालीम दिलवा दी। दो बेटे सरकारी नौकरी में हैं। तीसरा अभी वाराणसी में ही रहकर ट्राई कर रहा है। वह कुछ वर्षों में सफल हो जाएगा। बुधू जी को पूरा विष्वास है। इधर स्कूल के कलर्क जो जाति के धुनिया है, थोड़ा काडेर आया; काफी खुष है– बुधू सर से। बुधू सर की वजह ही वह नासिराबरद में सोन नदी के तट पर दो कट्टा जमीन इस महंगी में खरीद पाया। वह भी दस लाख रूपये कट्टा। वरना वह कभी संभव नहीं हुआ होता। चपरासी ने भी एक ग्लैमर मोटरसाईकल खरीद ली है। फिर बुधू सर को कितना कमाये होंगे। समझ सकते हैं। टीचर लोग आपस में बातें कर रहे होते है। तभी ऋतंभर सर इकबाल से बोले पंद्रह लाख बोले। इस पर इकबाल ने तपाक से कहा – ''रहने न दीजिए! पंद्रह–बीस हजार तो स्साला पीछवाड़े में घुसाया होगा! सुना है– दो बीघा जमीन गाँव पर खरीद लिया है। और एक भव्य मकान उठा लिया है। इस दो वर्षों के भीतर। जवारी कहते हैं कि वैसा घर किसी बाभन–राजपूत का भी नहीं है। यहाँ तक कि ठाकुर जी का भी घर नहीं है। जिसकी रखैल उसकी माँ को गरीबी की हालत में बनना पड़ा था।'' लोग बुधुआ को बुधुआ नहीं, बुधुजी या बुद्ध महात्मा कहकर बुलाते है। समाज की नजरों में उसकी इज्जत बढ़

गई है।एक षिक्षक जिनका नाम चंदू मुखर्जी है। जाति के ब्राह्मण। वे प्रारंभिक दिनों में एक आदमी से इससे एक हजार का बाजी लगा दिए कि नासिराबाद को जो हेडमास्टर है। उनका नाम बुधुआ चामार नहीं, बुद्धदेव चमड़िया है! उन्हें लोगों को नाम बिगाड़कर बोलने पर क्रोध भी हुआ! पर बुधु जी से मिले तो बुधु ने खुद कहा कि उनका नाम बुधू या बुद्धदेव नहीं। बल्कि बुधुआ चमड़िया है। वह उत्तर प्रदेष का है। इतना कह उनका ज्वाईनिंग स्वीकार करते हुए; कागज के एक कोने पर हरे रंग से हस्ताक्षर कर दिया – बुधुआ चमड़िया। हेडमास्टर उ. वि. नासिराबाद, रोहतास! तब चंदू मुकर्जी को अपने–आप पर बहुत खिन्नता आई। और वे स्वयं की मूर्खता पर पचताए भी कि नाहक उस आदमी से एक हजार रूपये की बाजी लगा दिए!

फिर भी लोगों का यह आष्चर्य ही था कि इतना छोटा स्कूल से उतना रूपया बुधूजी कमा नहीं सकते। साठ हजार उनका वेतन था। वह अपने वेतन से ही घर उठाए होंगे! पर इकबाल कहते कि यह जो पछेयारी बिल्डिंग बनी है; उसमें बुधुआ कितना कमाया होगा। यह सोच सकते हैं! आकलित राषि थी; पाँच करोड़ की। क्या तीन करोड़ की? क्या यही तीन करोड़ की राषि का कमरा है कि बरसात के दिनों में दो दिन झमाझम बारिष शुरू हो जाए तो छात्र–छात्राओं को टिपटिपवा का डर सताने लगे! इकबाल की इस बातों को सुनकर सभी षिक्षक हँस पड़ते। पर अगले ही पल कोई टीचर होठों पर एक तर्जनी रख चुप रहने का इषारा करता और सभी षिक्षक चुप हो जाते। बुधू जी बरामदे में टहल रहे हैं। वह आज प्रसन्न हैं।

।। 6 ।।

साल दो हजार अट्ठारह। जुलाई के अंत में बुधू जी रिटायर होने वाले हैं। रोज एक दो टीचरों को धमकाते–फिरते हैं। कहते हैं –''जबतक मैं हूँ, आपलोग चुप रहिए। वरना आपका सी.सी.आर. खराब कर देंगे। वरना एस.सी./एस.टी एक्ट तो ऐसा है कि पूछिए मत....।'' स्कूल के अधिक षिक्षक उनसे दूरी बनाकर रखते हैं। इस बार स्कूल में पिछले साल की अपेक्षा दुगूने छात्रों का नामांकन हुआ है। बुद्धू जी का कहना था कि अब तक आपलोग हमें इज्जत करते आएँ हैं। इस बार मेरा अनुरोध है कि जितना भी बच्चे आ जाएँ; उन सभी का नामांकन हो जाए तो इलाके की प्रतिभा मरने से बच जाएगी। यहीं होगा कि षिक्षकों पर थोड़ा भार बढ़ जाएगा। प्रति सेक्सन अस्सी छात्रों की जगह एक सौ बीस बच्चें होंगे यही न! यह कोई ज्यादा भार नहीं।'' षिक्षक बेचारे उनके एक–एक शब्द एक–एक वाक्य को किसी तरह पचा रहे हैं। अंदर–अंदर वे खौल रहे हैं। पर, कर भी क्या सकते हैं। सरकार भी तो वैसे ही है। किसके पास फरियाद लेकर जाएँ। नेताओं के पास, या अधिकारियों के पास? बुद्धू जी का उनलोगों के बीच बड़ी पैठ है। पैठ रहे भी क्यों नहीं? सबकों खिलाते–पिलाते व दो–पाँच हजार देते रहते हैं। स्कूल में आमदनी थोडे कम है। हेडमास्टर और कलर्क के बीच चोली दामन का संबंध है। लेकिन इस दिनों कुछ गड़बड़ दिख रहा है। बात क्या है – किसी को पता नहीं! फिर भी बुद्धू जी का रथ आगे दिषा की ओर इतना बड़ गया है कि वे पीछे मुड़कर देखना अपराध समझते हैं। उनमें काफी कड़क है, वे आए दिन षिक्षकों पर नये–नये प्रयोग करते रहे हैं। उन्हें धमकाना, कभी कभार गाली देना, दूसरे के हाथो पिटवा देना! कहते हैं –लोग की जब वे षिक्षक

बनकर नए–नए आए थे तो किसी भूमिहार टीचर के कपड़े फिचते थे, इस्तरी देते थे और उनका खाना बनाते थे। और बाद में वही इनका गुरू हो गए! खैर! आज बूद्धू जी साठ के हो गए। उनका रिटायरमेंट का दिन। बुद्धू जी उदास हैं। पर हँस–हँसकर यह बताने की कोषिष कर रहे हैं कि उन्हें कुछ मलाल नहीं। पर, मलाल साफ–साफ उनके चेहरे पर दिख जा रही है। साल भर से उनका पेमेंट रूका हुआ है। इसकी भनक षिक्षक का जरा भी नहीं थी! न जाने उड़ते–उड़ते कानों में यह बात कहाँ से आई? टीचर स्वयं से ही प्रष्न कर रहे हैं। कुछ लोग बता रहे हैं कि अखबार में कुछ निकला है। तब से बुद्धू राम काफी उदास हैं। वे हैं उ.प्र. के! वह भी एस.सी! पर बिहार मे इतने दिनों से वे नौकरी कर रहे हैं। वह भी एस.सी. बनकर। उनकी बहाली जेनेरल में होनी चाहिए थी। पर, एस.सी. का ही हक मारकर, अपने जमाने में अधिकारियों को घूस देकर, कम अंक रहने के बावजूद भी दंगल मार लिए हैं। कोई एस.सी हीं केस लड़ रहा था। फैसला उसके पक्ष में आया है। तब से बुद्धू जी बेचैन है। वह हालाहाली 40 हजार रूपये लेकर एक मुस्लिम को प्रधानाध्यापक बनवाने की आष्वासन दिए थे। पैसे लेकर खा गए। अपनी सीट उन्हें ही दिलवा दी। सुना यह भी जा रहा है कि यह नियम विरूद्ध काम हुआ है। कोई यादव भी केस कर दिए हैं। हक उनका बनता है। सीनियर बुद्धूजी के बाद वहीं है। उनके साथ काफी नाइंसाफी हुई है। बुद्धूजी पैंतरे बदल रहे है; हिन्दू–मुस्लिम का। रिटायरमेंट के बाद भी उनका पैंतरा चल दिया है। अभी कैस–बुक उनके ही कब्जे में है। दस दिन बाद ही बेचारे अंसारी जी हेडमास्टर के सीट से उतार दिए गए और यादव जी हेडमास्टरी संभाल रहे हैं। वे खुष हैं। पर जंजाल में पड़ गए हैं। अखबार वाला आया है। कह रहा है दस हजार रूपया दीजिए। विद्यालय के फंड में पैसा नही है। सब बुद्धू जी निकाल लिए हैं। लकड़ी वाला आया है –कह रहा है, पैसा दीजिए। उच्च अधिकारी ने कैष बुक उनसे मांग है; पर कैष बुक उनके पास नहीं है। वह किसी तरह हाथ–गोड़ जोड़कर अधिकारी को मनाए हैं। बुद्धू जी का फोन भी नहीं लग रहा। वे उ.प्र. गए हैं। किसी ने बताया है। अधिकारी दस हजार रूपये लेकर बात मान गया है। पर कहा है कि एक सप्ताह का समय देता हूँ– कैष–बुक हाजिर होनी चाहिए। बुद्धूजी चार दिन बाद लौटे हैं नासिराबाद। कैष–बुक के बारे में यादव जी व उनमें बात चीत चल रही है। बुद्धू जी कह रहे हैं। स्कूल के खाते में मेरा डेढ़ लाख रूपया चला गया है, आप चेक काटकर मुझे दीजिए। यादव जी हैरान हैं। उन्हें लग रहा है काष! कोई कृष्ण आते और इस इन्द्र के कोप से बचाते। आस–पास कहीं गिरी पर्वत भी नहीं, कि भागकर उस पर चले जाते। न हाथों में काई सुदर्षन है? एस.सी/एस.टी. एक्ट के आगे सुदर्षन बलहीन है। लगता है; उन्हें कि कोर्ट का दरवाजा खटखटाना पड़ेगा। ऋतंभर इसका गवाह है।

पाकिस्तानी–सिम

'क्यों अभि' ठीक तो हो! उसने पूछा! अभिषेक को लगा आखिर क्यों अमन उससे पूछ रहा है – ''क्यों अभि' ठीक तो हो।'' ऐसे अभिषेक से अमन बहुत कम बोलता –बतियाता है। दोनों एक ही गाँव के हैं। एक ही साथ विद्यालय में पढ़े भी हैं। मगर दोनों के विचार भिन्न हैं। अभिषेक थोड़ा नये जमाने के नये विचारों वाला लड़का है और अमन थोड़ा परंपरावादी! फिर भी दोनों में ऐसा नहीं है कि वे एक दूसरे से घृणा करते हों और एक दूसरे की तरक्की देखकर जलते हों। खैर! अभिषेक ने बहुत की विनम्रता व सहजता के साथ उत्तर दिया –'हाँ' अमन, सब कुछ ठीक है! ''अमन को थोड़ा आष्चर्य हुआ। उसे लगा अभिषेक कुछ छुपा रहा है। कुछ क्या, पूरी बात छुपा रहा है! सरफराज उसी गाँव का लड़का है – वह अभिषेक के साथ काम करता है। दोनों एक ही कम्पनी में काम करते हैं –दिल्ली में। हालांकि दोनों प्रइवेट कंपनी में काम करते हैं। दोनों की अच्छी सैलरी है। पर अभिषेक अपनी बीबी से परेषान रहता है। उसकी बीवी अमीर घर की लड़की है। वह हमेंषा अभिषेक पर दबाव बनाती है – कहीं घमूने–फिरने व रेस्तरां में खाना खाने के लिए संडे के दिन वह ऐसा कर पाता है; पर हर बार रेस्तरां जाना, महंगे डिस के लिए आर्डर देना, उसे अच्छा नहीं लगता; कारण कि उसकी आमदनी कम है, उसी से वह अपना परिवार चलाता है। उसके दो बच्चें हैं। दिल्ली में बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला मिलना भगवान से भेंट होने जैसा है। सो उसके एक बच्चे को इस साल स्कूल में दाखिला हो गई है। और अगले साल सोचा है –अपनी छोटी का दाखिला कराना। उफ्फ! दिल्ली में कितना मुष्किल है यह सब करना। वह अच्छी तरह जानता है और उसे यह बात समझ में नहीं आती कि बच्चों के नामांकन कराने के लिए मम्मी पापा कितना पढ़े हैं, इससे स्कूल को क्या लेना–देना है? क्या जिसके माता'–पिता पढ़े न हो तो उसके बच्चे का एडमिषन नहीं होगा इस देष में। राम ही जाने? कैसी स्थिति बनती जा रही है! अभिषेक इतनी ही देर में यह सब सोचने लगा। फिर अमन ने टोका –''किस चिंता में हो भाई? जरा हम भी तो जाने! सुना है .....'' इतना कह ही पाया था कि अमन को लगने लगा कि वह कुछ गलत बोल गया है। पर अभिषेक बहुत ही धैर्य के साथ उत्तर दिया– जो कुछ सुना है –ठीक ही सुना है। आज इसमें हैरत करने की कोई बात नहीं। दिल्ली जैसे बड़े शहर में ऐसी रोज घटनाएँ घट रही हैं। किसी की औरत किसी दूसरे के साथ भाग जा रही हैं, या कोई मर्द ही अपनी औरत को छोड़कर दूसरे पर रहने लग रहा है। अभिषेक अमन से यह कह भले रहा था, किंतु अंदर से वह बहुत टूट गया है, ऐसा अमन को लगा। जबकि अमन जानता है कि गाँव के लोगों ने अभिषेक के बारें में न जाने कौन–कौन सी मनगढंत कथाएँ गढ़ और उसे बदनाम किए हैं। कभी उसे मुसलमान के रूप में घोषणा कर हिंदू समाज से काटा, तो कभी नास्तिक होने की वजह उसके यहाँ से हुक्का–पानी नहीं रखा। बात कुछ यूँ थी – अभिषेक को ब्राह्मणी व्यवस्था से बचपन में ही उब सी हो गई थी। जब वह दषहरे में दूर्गा–पूजा पंडालों में एक काला–कलूटा इंसान की छाती में दुर्गा द्वारा भाला मारा हुआ देखता और छाती से रिसते खून तो उसे अजीब महसूस होता। वह बचपन में अक्सर अपनी माँ के साथ मेले में जाता। माँ कहती कि ये माँ हैं, इन्हें प्रणाम करो। वह माँ की आज्ञा का पालन करता। और आँख बंदकर प्रणाम करता। किंतु ज्योंहि वह आँख बंद करता, उसके भीतर उक भय समा जाती कि वहीं वह भाला .....।'' कुछ समय के लिए वह डर

जाता। वहीं चैत नवमी के वक्त देखता कि गाँव की काली मंदिर के पास सायर माँ को 'कोई बकरा चढ़ाता है, कोई सूअर। उसे यह सब देख अच्छा नहीं लगता। खून देख उसे अजीब सी वितृष्णा होती। ''तब से वह निर्णय ले लिया था कि वह सयाना होकर इन देवी–देवताओं के चक्कर में नहीं पड़ेगा। हालांकि रावण द्वारा सीता माता की चोरी की घटना सून उसे रावण पर गुस्सा आता; पर सूपर्णरेखा की नाक कटने की घटना भी उसे अजीब लगती। वह कभी सोचता था, न जाने पहले के जमाने में क्या कुछ होता था। पर, आज जब दुनिया एटमबम के युग में प्रवेष कर गई है, तो एक आषंका उसे अभी खाए जा रही होती है कि न जाने इस घातक हथियार से कितने लोग मारे जाएँगे। वह नौंवी कक्षा में हीरोषिमा व नागासाकी का इतिहास पढ़ चुका है। वह यह भी जानता है कि अमेरीका ने किस तरह से तेल हथियाने के लिए इराक में क्या से क्या नहीं किया? आज उसकी बीबी को कोई दूसरा हथिया लिया है तो इसमें किस बात का अचरज? आखिर उसके सपने वह पूरा भी तो नहीं कर पा रहा था और पूरा करता भी तो कैसे? सीमित सैलेरी से सीमित जिंदगी की ही तो आषा की जा सकती है। इच्छाएँ अनंत हैं, और भोग की वस्तुएँ भी तो अनंत है। और उसी इच्छा ने मनुष्य से कई युद्ध लड़वाएँ हैं; वरना जोधा भला क्यों जाती अकबर के घर? ये सब सोच ही रहा था कि अमन ने बताया कि सरफराज बता रहा था यह सब कुछ। वह भी इस हिदायत के साथ कि पूछने मत लगना जाकर अभिषेक से। पर मुझसे रहा नहीं गया। बचपन में एक साथ अमिया के लिए, बेर के लिए, बढ़हर के लिए बगीचे में जाते थे; सो मुझसे रहा नहीं गया। भले ही तुम्हारे ईष्वर के प्रति अगल ख्याल की वजह हम तुमसे बहुत कम बोलते थे। लेकिन आज मुझे लगने लगा है कि इसी का नाम लोकतंत्र है। मुझे जहाँ ईष्वर को मानने का हक है; वहीं तुम्हें न मानने का हक भी है! अमन की यह बातें सुनकर अभिषेक को बहुत अच्छा लगा। लगा गले लगा ले अमन को! पर ऐसा वह कर नहीं पाया। अभिषेक ने बस इतना ही कहा –''ठीक कह रहे हो!'' फिर अमन ने कहा – ''तुम्हारे बच्चे कैसे हैं और बच्ची?'' ''दिल्ली में ही हमने अपने बच्चे का एडमिसन एक अच्छे से स्कूल में करा दिया है। यह तभी हुआ जब मुन्ने की माँ हमलोगों के साथ थी। उस वक्त मैं सोच भी नहीं सकता था कि वह यह सब कर भी कैसे सकती है? पर, सोसाईटी में दुष्टों की कमी भी तो नहीं। वही जिस दूकान पर वह रोज सौदा खरीदने जाती थी, वहीं पर अक्सर उसे एक रिटायर्ड फौजी मिल जाया करता था। उसकी पत्नी मर चुकी थी। उसके पास पैतृक संपत्ति भी बहुत थी गाँव पर। वह कहीं षिमला के आस–पास का था। मुन्ने की माँ को षिमला बहुत पसंद थी। हमलोग दो बार गर्मियों की छुट्टीयाँ बिताने षिमला गए थे। तभी से उसका मन षिमला में अटक गया था। वह षिमला में बसने के लिए मेरे ऊपर हमेषा दबाव बना रही थी। वह चाहती थी कि मैं अपने बिहारी माता–पिता को छोड़–छाड़कर षिमला षिफ्ट कर जाऊँ; पर मैं ऐसा नहीं कर सका और वह एक दिन उसी रिटायर्ड फौजी के साथ भाग गई और उसे अपने बच्चे की तनिक मोह भी नहीं आई और न उस रिटायर्ड फौजी को! मैंने कालोनी वालों से उसका पता पूछना चाहा; पर किसी ने सही पता नहीं बताया। हाँ, उस राषन के दूकान वाले ने इतना बताया कि आपकी बीवी अक्सर यहाँ आती थी, तो उस फौजी के साथ सामने वाली दूकान पर कॉफी पीती थी। मुन्ने के स्कूल से यह पता चला कि भागने के दिन वह मुन्ने से मिलने आई थी और उसे ढ़ेर सारा प्यार किया। मुन्ने ने भी यहीं बताया। आज उसे भागे दस रोज हो गए। अभी मुन्ने को यह मालूम नहीं है कि उसकी माँ किसी दूसरे के साथ चली गई है।

मैं चार दिन की छुट्टी पर गाँव आया हूँ। छोटी बेटी को माँ के पास छोड़ने ताकि उसकी परवरिष हो सके। मैंने एक अज्ञात फौजी पर पहाड़गंज में एक सनहा दर्ज करा दिया है। पर, उससे क्या होता है? एक सप्ताह बाद मिलने को कहें हैं। पत्नी का फोन नम्बर मांगे थे, कॉल लोकेट करने पर पता चला था कि वह कालका के पास उस नंबर से अंतिम बातचीत हुई है। करीब आधा घंटा। पर जिस सिम से बातचीत हुई है, ज्ञात हुआ है कि वह सिम पाकिस्तान की है!

झाबरा–कुत्ता

वह एक दफ्तर का कलर्क था। साधारण–सा कद, होठों पर चरक का दाग। कभी वह पजामा–कुर्ता पहनता, कभी फुलपैंट–कुर्ता। जाड़े के दिनों में अक्सर वह एक पुराना काला–सा कोट पहनता। आँखों पर कभी–कभार चाष्मा का शौकीन भी था। इतना ही नहीं उसे अंडा–बिरयानी, मुर्गा–बिरयानी, मछली–भात और कभी लिट्टी चोखा की उसे बुरी लत थी। वह खाने के लिए किसी भी हद तक गिर सकता था। पर, उसके मुँह से अल्लाह–तआला की बखान सुनकर आप दंग रह जाएँगे कि क्या यह वही व्यक्ति है, जो अभी–अभी दो बच्चियों से घूस के तौर पर सौ–सौ रूपया रूलाकर लिया है! बच्चियाँ देखने से गरीब घर की जान पड़ती थीं। एक उजले पर मटमैले समीज–सलवार पहने हुए थी, हालांकि उसके कपड़े से मैल पूरी तरह झड़ा न था, इसलिए रंग उदास ही था। वह गोरी थी। पर रंग उड़ा सा। दूसरी सॉवली थी, वह जिंस पहने हुई थी; किंतु उसकी आँखें, अंगुलियाँ व चेहरे खुष्क थे। वे घूस के तौर पर एक चवन्नी भी देना नहीं चाहती थी; क्योंकि टीसी का कोई अलग से चार्ज विद्यालय का नहीं हुआ करता है। फिर भी उसे देना पड़ा! अगले दिन एक और लड़की उसके दफ्तर में आई, उसे इण्टरमिडिएट के मूल प्रमाण–पत्र लेने थे, उससे उसने पाँच सौ रूपये टाने और बहुत खुष हुआ। यहीं नहीं मन ही मन अल्लाह को शुक्रिया भी बोला। हाँ वह घूस लेता था, पर अल्लाह को शुक्रिया बोलने से कभी चूकता नहीं था। कभी–कभी तो बिल्कुल धर्मात्मा की तरह बोलने लगता। 'हराम की कमाई' को तौबा कहता; पर वह मानने वाला कहाँ था? कब वह धर्मात्मा की तरह व्यवहार करता और कब उस पर शैतान सवार हो जाए; कहा नहीं जा सकता था। वह तीन भाई था। एक किसान, दूसरा फौज में और तीसरा वह खुद था। बचपन उसकी अर्थाभाव में बीती थी। यह सच था। उसके पिता कबाड़खाना में काम करते थे। माँ बहुत ही बिगडैल औरत थी; फिर भी वह उसे मानती थी। कभी–कभी वह अपनी माँ को याद करता तो लगता वह रो देगा। किंतु कोई बूढ़ी औरत स्कूल में उसके पास किसी काम से आती तो उसे कुत्ते की तरह बोलता। और माँ उसकी कहाँ चली जाती पता नहीं। पैसा को देखते हुए उसकी लार टपकती रहती। चाहे बच्चा हो चाहे बूड्ढा सबसे उसे पैसे चाहिए थे। उस दिन वह बूढ़ी औरत, हलांकि वह भी मुस्लमान ही थी, पैसा बिला वजह देकर लोछिया गई थी! उसके पास आज आटा खरीदने के लिए पैसे तक नहीं थे। वह अपने नातिन के लिए 'ट्रांसफर सर्टिफिकेट' लेने आई थी। इतना कुछ सुनने के बाद आप उस शख्स का नाम जरूर जानना चाहेंगे। तो चलिए बता देता हूँ, उसका नाम। उसका नाम था मो. असद। कितना भव्य–सा नाम था। मगर अर्थ उसका 'व्याघ्र'! वह एक ऐसा व्याघ्र था जो इंसान को खाता था और शुकर को तौबा करता था। यह मेरा नहीं; उस बूढ़ी औरत का कहना था जो उस दिन उसके व्यवहार से घृणा से भर आई थी। 'षुकर' का नाम लेना भी हराम जैसा मुस्लिमों के लिए होता है; पर उससे रहा नहीं गया। 'ट्रांसफर सर्टिफिकेट' नातिन के हाथ में आते ही वह बोल दी । उसी दिन लगा उस बूढ़ी औरत को असद कच्चा चबा जाएगा; पर इतना ही कहकर अंत में चुप रहा –''फिर आना कभी काम के लिए, मैं करता हूँ। बूढ़ी औरत कुछ बोली नहीं; उसे लगा कि उससे लगना किसी मैले पर ढ़ेला फेकने से कम नहीं था। वह अबतक समझ चुकी थी। वह विद्यालय के प्रधान से षिकायत करना चाहती थी। पर, प्रधान थे नहीं। अगर रहते भी तो क्या कर लेते? आजकल कौन नहीं जान रहा है

कि हाई स्कूल के प्रिंसपल विद्यालय प्रबंधन कम, रूपया प्रबंधन के कितने माहिर हैं? उस दिन की घटना के बाद मो. असद किसी से दो दिन कुछ बोला नहीं था। अक्सर, वह ऐसा करता था। इसे सभी जानते थे। यहाँ तक के स्कूल स्टॉफ के अलावे। गाँव के बहुत से लोग भी। पर, न जाने उसे क्या हो जाती दो दिन बाद कि वह पैसे के लिए इतना बेचैन हो जाता था कि वह रोज नयी तरकीब निकाल लेता और पैसा उसकी मुट्ठी में। वह अक्सर कहता था कि ''पैसा नहीं; मैंने पैसा को कमाया है।'' पर वह अपनी जिंदगी में बहुत कम ही खुष रह पाता था। लेकिन लाख चाहने के बावजूद भी कभी बीबी उसे लताड़ती, कभी लड़का। सुना था कि उसका एक लड़का आतंकी संगठनों से जा मिला था। वह एक कष्मीरी लड़की से निकाह कर लिया था। झूठ था कि सच मैं तो नहीं जानता, पर उसी के गाँव के असलम मियाँ यह बात बहादूर सिंह से बताए थे। इस मामले को लेकर वह दुखित नहीं था, उसे फक्र था कि उसका बेटा जेहाद में शामिल है; पर उस दिन वह खासे तबाह हो गया जब स्थानीय पुलिस उसके दरवाजे पर आ धमकी और उसके बेटे को धर दबोचा। उस दिन उसे लगा सारी जिंदगी की कमाई अब खतम हो जाएगी। वह कभी परवरदीगार से माफी माँगता, कभी पूर्वजों को याद करता, पर पुलिस मानी नहीं उसे पिटती–पाटती थाने ले गई। हालांकि, उसे मारने का अभी कोई हक नहीं था; क्योंकि पुलिस के पास जो सूचना थी; वह किसी विष्वस्त–सूत्रों से मिली थी और उसमें कितनी सच्चाई थी –संदिग्ध थी। किंतु अल्लाह का शुक्र था कि उसके पास एक खास आतंकी संगठन का पर्चा बरामद हुई थी; जो बिहार में अभी सक्रिय हो रही थी। असद इस घबराहट में भी अल्लाह पर भरोसा किया हुआ था; कुछ हिन्दू मित्रों के सहयोग से कुछ ले–देकर पुलिस से किसी तरह वह निपटा और बेटा को छुड़ाया। पुलिस उससे एक दिखावे के तौर पर माफीनामा लिखवाई और उसके जाने के बाद उस कागज के टूकड़े को फाड़कर फेंक दी। इस घटना के गुजरे हुए छह साल होने वाले हैं। तब से आज तक कुछ सावधान सा रहने लगा है – मो. असद। पर ऐसा नहीं है कि उसका व्यवहार बिल्कुल बदल गया है। वह यह भी कहा करता है कि –''बाघ बूढ़ा होकर बकरी नहीं हो जाता।'' मतलब यह कि आज भी वह बाघ है। उसके भाई लोग भी उसकी आदतों से तंग हो चुके थे। माँ अब इस दुनिया में नहीं थी। अब्बू तो उसकी शादी के साल ही गुजर गए थे। जब बाप गुजरे थे; उस दिन उसकी आँखों में एक बूँद आँसू नहीं आई थी। माँ ने उसे बताया था कि उसके बाप ने उसे बड़ा दुःख दिया है। वह एक किलो गोष्त के लिए तरस जाती थी। उसका समीज–सलवार में अक्सर पेबंद लगे होते थे। तब से मो. असद को अपने बाप से नफरत–सी हो गई थी; फिर भी माटी–मंजिल में लोक–लाज के चलते गया था। उसके व्यवहार से उसके बड़े भाई मो. अमजद काफी दुखित थे। पर, भाई था क्या करते! किंतु जब उसके लड़के की सच्चाई जानी तो हमेषा के लिए मुँह मोड़ लिए। उनका कहना था –''मुल्क से मुहब्बत करना हर इक सच्चे मुसलमान का फर्ज है।'' पर उनका सम्मान न तो कभी मो. असद किया और न ही उसका बेट मो. जफर इमाम! खैद दिन गुजरता गया। स्कूल का प्रबंधन कमेटी उसके व्यवहार से असंतुष्ट चलने लगी। राज्य की सरकार बदली। दूसरा नया विधायक जीतकर विधान सभा में गया। स्कूल के स्टाफों को थोड़ा सूकुन मिला कि अगर कुछ भी दाएं–बाएँ असद करेगा तो इसका कम्प्लेन थाने में दर्ज किया जाएगा। और ऐसा दिन एक दिन आ ही गया। वह विद्यालय के षिक्षक मो. कमरान खान पर हाथा उठा दिया, उससे गली–गलौज कर दी। इमरान के पक्ष में सारे हिंदू–मुस्लिम षिक्षक युनाईट हो

गए और मामला अदालत तका जा पहुँची। फिर भी मो. असद को ऐसा लग रहा था कि वह यहाँ भी कुछ ले–देकर मामला रफा–दफा कर देगा।'' पैसा से सब कुछ निपटाया जा सकता है।'' का उसका सिद्धांत यहाँ फेल हो गया। नये विद्यायक ने भी इमरान के पक्ष में एड़ी–चोटी लगा दी। हारी सरकार कुछ नहीं कर सकी। मो. असद ने कुछ मुस्लिम–युवकों को पैसा देकर हो हल्ला जरूर करवाया; पर सब बेकार गया। वह छह महीने के लिए सस्पेंड हो गया। अब तो वह घर ही पर रहने लगा। कोई दो माह गुजर गया। बारिष का मौसम आया। गाँव के सारे गृहस्त खेती–बाड़ी के काम में जुटने लगे; मो. असद ने सोचा कि घर पर बैठकर क्या करेगा। ऐसे भी विद्यालय वह जा नहीं रहा है। उसके हिस्से एक बीघा पैतृक जमीन पड़ती थी। उसी पर वह धान लगाना चाहता था। खेती के लिए बैलों पर निर्भरत का युग समाप्त हो चुका था। ट्रैक्टर से खेतें जोते जोन लगे थे। वह एक, तीन माह के लिए अपनी ही बिरादरी से बनिहार रखा। और खेती में वह भी जूट गया। गाँव के लोगों ने समझा कि वह अब बदल गया है। जो नहीं बोलते थे, वह भी उससे बोलने–बतियाने लगे! गाँव के लोग दिल के बहुत भोले होते हैं। दुष्मन को भी माफ करने में यकीं करते हैं। इस तरह गाँव का समाज मो. असद को एक तरह से माफ कर दिया। और खेती–बाड़ी में उसकी काफी मदद भी करने लगे। धान अच्छा लग गया। असद उसे देखकर खुष था। पर, उसे ऐसा लग रहा था कि जितना वह मिहनत इसमें कर रहा है, उसके हिसाब से 'प्रापत' उसे बहुत कम होगी। एक दिन वह अपनी बीबी से इसी पर बातचीत कर रहा था। तभी उसकी पत्नी ने उसमें छोटे भाई जान जो किसान थे, अपनी बेटी की शादी दाउदनगर में तय किए हुए थे। लड़के वाले सउदिया में रहते थे। थे तो बहुत नेक! पर आजकल की महंगाई को देखकर उन्होंने मात्र तीन लाख रूपये दहेज के तौर पर मांगा था। हलांकि यह सब के लिए उन्हें इस्लाम इजाजत नहीं देता; किंतु व्यवहारिकता यहीं थी कि लोग हिंदुओं की तरह मुसलमानों में भी दहेज लेने–देने के आदी हो चुके थे। क्या अमीर, क्या गरीब? छोटे भाई दाउद थे तो किसान ही बेचारे पैसा उतना कहाँ से लाते? फिर भी उन्होंने स्वीकार लिया था कि वे पैसा देंगे और अपनी चाँद सी बेटी को व्याहेंगे। उनकी कुछ यानी दो कट्ठे के पास परती जमीन थी, जो सोन नदी के तट से कुछ ही दूरी पर थी। वह जमीन मुख्य सड़क से सटी हुई थी। उसकी कीमत चार लाख से कम न थी। गाँव में सौदे की बात चल रही थी। पर सौदा बिल्कुल पटा न था। न ही किसी से बर–बयाना हुआ था। पत्नी के कहे पर मो. असद अपने छोटे भाई मो. दाउद से इस मसले पर बातचीत के लिए सोचा। और एक दिन दाउद को घर बुलाया। और कहा –''सुना है कि तुम अपनी बेटी की निकाह तय किये हो और बताया भी नहीं'' आखिर मैं तुम्हारा बड़ा भाई जो हूँ? किसी तरह की दिक्कत होगी तो कहना, हम तैयार हैं। आखिर तुम्हारी बेटी मेरी बेटी जैसी ही तो है।'' इतना सुनकर मो. दाउद करूणाद्र हो गए। लगा, भाई उसका फरिस्ता बनकर आया है। वह जानता था कि भाई अभी मुष्किल में हैं। छह माह के लिए सस्पेंड है। फिर भी पहले से पैसा तो कमाए ही हो। वह इतना जल्दी समाप्त थोड़े ही हो जाएगा। चूंकि वे जानते थे कि मो. असद पैसा का जनमा आदमी है। लेकिन इधर के व्यवहार से वे भी उस पर यकीन कर गए। बोले –''बड़े भाईजान, मैं सोच रहा था कि सड़क किनारे वाली वह जमीन जो सोन नदी के तट से कुछ दूरी पर है उसे बेंचकर अपनी रूक्साना की शादी कर दूँ। लोग उसे चार लाख रूपये दे रहे हैं। पर, बेचते बन भी नहीं रही है। वह पैतृक संपत्ति जो है। उसे तुम्हीं ले लेते तो बहुत अहसान होता। कोई

जानता भी नहीं और घर की जमीन, घर ही रह जाती।'' मो. असद ने कहा –''चलो ठीक है, ऐसे अपने भाई से जमीन खरीदना पाप–सा लग रहा है; पर.....।'' चार लाख में बात पक्की हो गई। उसके दो सप्ताह बाद बारात आई। दोनों भाईयों की मुहब्बत को देखकर लोग दंग थे। कल बातचीत भी नहीं होती थी और आज बिना एक दूसरे के खाना–पिना पूछे सोते नहीं। रूखसाना शादी के बाद अपने घर गई। मो. असद विद्यालय में पुनः ज्वाईन कर लिया। कोई षिक्षक उससे बोलता नहीं है अब। इससे उसका क्या जाता है? तभी एक दिन स्कूल में खबर फैली कि मो. असद और मो. दाउद में पैसे को लेकर झड़प हो गई। मो. असद शादी में कुल खर्च अपने हाथों पाँच लाख रूपये बता रहे हैं। दूकान से उसकी बिल भी बनावा लिए हैं। मो. दाउद को उन पर यकीन हीं नहीं है। उनके हिसाब से शादी में दूकान से सौदा तीन लाख पच्चीस हजार की ही हुई हैं। मो. असद ने मारकर अपने भाई का सर फोड़ दिया है। वह थाने गए हैं। थाना विद्यालय से सौ मीटर की मात्र दूरी पर है। थाने के इर्द–गिर्द से जो बच्चे स्कूल आते हैं; उन्हीं लोगों से बहादुर सर को यह सब बताया है। मो. असद आज विद्यालय नहीं आया है; पर सबकी जुबान पर मो. असद की कहानी चल रही है ...!!!

सपने टूटे थे

उसने सोचा भी नहीं था कि सबकुछ इतना जल्दी बदल जाएगा। घर बदल गए। जन बदल गए। गाँव और पेड़ बदल गए। नए लोगों के बीच वह ठीक से कह नहीं सकती थी कि वे ठीक–ठीक अपनों की तरह थे कि नहीं। ऐसे भी वह एक गाँव छोड़ कर इसलिए आई थी कि उसकी बिरादरी और मजहब वाले बहुत कम संख्या में उस गाँव में। लोग उसे और उसके पति को बहुत ही हीन नजरों से देखते थे। वहाँ, एक भी मस्जिद नहीं थी। हाँ–षिवाला, काली माई और हनुमान जी का एक–एक मंदिर जरूर थे; वहाँ। हाँ, गाँव के पूरब–उत्तर के कोने पर एक कब्रगाह जरूर थी, जो मृत्योंपरान्त मुस्लिमों के शव को दफनाने के काम आती थी। वह जिस गाँव में पहले रहती थी; वह हिंदू बहुल था। गाँव में कुर्मियों एवं राजपूतों में शान को लेकर झगड़ा होते रहते थे। मुस्लिमों की हैसियत वहाँ न के बराबर थी। न कोई जलसा, न कोई दाहा। ईद मनाई जाती थी। जिसमें हिंदू भी शरीक होते थे और हिंदुओं की होली में हमारी बिरादरी के भाई यानी मुस्लिम भाई भी जाते थे। मेरे पति अकरम के बेस्ट फ्रेन्ड कन्हैया चौधरी थे। जाति के कुर्मी। वे बहुत नेक दिल के आदमी थे। वे ईद में अक्सर सेवईयां खाने घर आते थे। पर, अल्लाह ने मुझे बहुत खुबसूरत बना दिया था। यहीं खूबसूरती मेरी जान की आफत बन गई। मेरे अकरम अक्सर काम करने राजपूतों के यहाँ जाते थे। वे लोग अपने को स्वयं से ऊँची जाति के लोग कहते थे। लोगों को न चाहते हुए की उन्हें –''बाबु साहब'' कहकर पुकारना पड़ता था, खाट से उठना पड़ता था। नहीं तो बाबुसाहबों का उत्पात देखते बनती थी। मुझे शादी कराकर आए पंद्रह साल हो गए। मेरा बेटा 13 साल का हो गया है। और मुझे विवष होकर उस प्यारे से गाँव से जुदा होना पड़ा। उस गाँव का नाम बताना नहीं चाहती हूँ। वरना, उस गाँव से लोग घृणा करने लगेंगे। शादी के छह महीना बाद ही मेरी रीता, गीता, कुसुम सहेलियाँ बन गई थीं। उनलोगों का घर मेरे घर के बगल में ही था। आज की तरह उन दिनों सबके अपने शौचालय नहीं थे। तब, हम साथ ही सूरज डूबने के बाद खेत की ओर जाती। हँसी मजाक करतीं। कितना सुंदर दिन थे! वे लोग मेरे बेटे अमीर को बिस्कुट, मीठी रोटी व पुआ खिलातीं। तब से मेरा अमीर गोष्त से ज्यादा पुआ ही पसंद करने लगा है। मुझे वह दिन अभी भी याद है। कुसुम दीदी ने मुझे पुआ बनाना सीखाया था। तब मुझे समझ आया था कि –''छन –छननऽनन क्या होता है? पर, भाग्य में बहुत बुरा बदा था। एक दिन हमारे शौहर को बाबुओं ने इतना पीटा की उनकी दाहिनी हाथ की हड्डी टूट गई। मुँह में मुता। हाय तौबा। सुअर के बच्चों को तनिक मोह भी न आई। बात सिर्फ इतनी ही थी कि वे उनके खेत पर काम कर रहे थे। उन्हें जोरों की प्यास लगी थी। वहाँ एक कुआँ था। कुआँ के बगल में बाबुसाहब की मड़ई। प्यास के मारे हमारे अकरम बेहाल थे। कुँआ के पास पानी पिने गए। वहाँ बाल्टी न थी; कोई खोलकर ले गया था। डोरी वहीं पड़ी थी। हाँ, एक लोटा स्टील का, वहाँ जरूर था। प्यास बुझाने के लिए मेरे अकरम ने लोटा में डोरी बाँधकर पानी खींचकर पी लिया था। जब पानी पी रहे थे, उसी वक्त न जानें कहाँ से मनोज ठाकुर आ गया। शैतान जैसा काला था। लोटा से पानी पीते देखकर बमक गया। और भद्दी–भद्दी गालियाँ सुनाने लगा। मड़ई से एक छोटा–सा टनपा निकालकर मेरे अकरम को इतना पीटा कि मैं उस दिन कसम खा ली कि अब मुझे इस गाँव में नहीं रहना है। पर, बात इतनी ही तक सीमित न रही। उस रात परछती फाँदकर

रात को मनोज ठाकुर मेरी इज्जत लूटनेकी कोषिष की। पर, हल्ला सुनकर कुर्मी–कोयरी लोग जाग गए। लाठी लेकर दौड़े तब जाकर मेरी इज्जत बची। उस रात अकरम दर्द से कराह रहे थे। उनके भीतर खड़ा होने की शक्ति नहीं रह गई थी। पर, वे क्या करते। उन्होंने एक गाली दी। मरता इतना भी नहीं कर सकता। पर, हम सुरक्षित थे यानी हमारी इज्जत अल्लाह तअल्ला ने बचा दी थी।

कोई एक महिना हो गए। हमलोग कसया छोड़कर मीरगंज आ गए हैं। यहाँ हमारी एक खाला की बेटी रहती हैं। उसी ने अपने घर हमें पनाह दी है। यहाँ हमारी बिरादरी के लोग हैं –जुलाहा हैं, पठान हैं, धुनिया हैं, कसाब है, राईन हैं। यहाँ पाँच मस्जिदें हैं। अमीर के अब्बू हर इक जुम्मे को रोज नमाज पढ़ने मस्जिद जाते हैं। पहले से ज्यादा खुष रहते हैं। अमीर यहीं पर हाई स्कूल में नामांकन करा लिया है। अषरफ, असद, गुलफान, सलमान और इरषाद उसके दिली व जिगरी दोस्त हैं। राबिया, फातमा, जुबैदा व सहेला हमारी पड़ोसन हैं। पर, फातमा हमें तवज्जो नहीं देती। जबकि वह पढ़ी लिखी औरत है। दीन–धरम की बात जानती है। किंतु उसका व्यवहार रूखा है। वह हमें 'बाहरी' कहकर बुलाती है। तब मुझे अच्छा नहीं लगता।वह मुझे नीची निगाओं से देखती है। कहती हैं –हिंदुओं की भाषा बोलती है। उर्दू की वह अलीफ, बे, ते, से तक भी नहीं जानती है।'' तब मुझे बड़ा कष्ट होता है। हमने एक बार कहा भी था कि –''दीदी दोपहर में मुझे कुछ सिखा दो ना!'' तब उसने नाक सिकुड़कर कहा था– ''रजिया,बूढ़ सुग्गा पोस माने हैं? चल कहती है तो तुझे हदीस की एक लाईन सुनाती हूँ तू ध्यान से सुनना। उसने मुझे उसे पुनः दोहराने की बात कहीं। मैं ठीक–ठीक सुना नहीं पाई, तो उसने मुझे थप्पड़ जड़ दी– ''कहीं थी न कि बूढ़ा सुग्गा पोस नहीं मानते हैं''। उस दिन मैं बहुत रोई थी। कहाँ तो यह सपने लेकर आई थी कि यहाँ मीरगंज में अपनी जाति–बिरादरी के लोग मिलेंगें तो प्यार करेंगें; पर यहाँ कोई कुसुमी दी नहीं मिली। और तो और मुहर्रम का महीना था। हमारी टोली से ताजिया निकलने वाला था। टोले के बच्चे ताजिया के लिए चँदा इक्कट्ठे कर रहे थे। मेरे घर से भी पचास रूपये चँदा लिया गया था। हमारे बच्चे ताजिया विसर्जन में हिस्सा भी लेने गए थे। उस दिन मेरे अमीर को जबार खाँ के लड़के ने जानबुझकर पीट दिया था। इस पर मैं पंचायती बुलाना चाहती थी; पर कोई पंचायती के लिए आगे नहीं आया। जब्बार खाँ यहाँ यानी मीरगंज का बड़ा आदमी है। उसकी हैसियत सिर्फ मुस्लिम तक ही नहीं है, बल्कि वह एक मीरगंज का नेता है। वह मुस्लमानों का अगुआ है। उसके एक इषारे पर क्या से क्या नहीं हो जाता! हिंदुओं में माली, कुषवाहा, बनिया और दुसाध हैं। उनकी यहाँ चलती नहीं चलती। जो हैं से वह मुसलमान हैं। यहाँ पाँच मस्जिदें हैं। मस्जिदों से आती आवाज सुनकर दिल खुष हो जाता है। पर, मुसलमानों के करनामें सुनकर आप दंग रह जाएँगे। मैं उन सभी को बताऊँगी नहीं। लोग जान जाएँगें और मुझे मीरगंज से निकाल देंगे। वरना, शैतान की तरह पत्थर मार–मारकर मुझे हमेषा हमेषा के लिए दुनिया से भेज देंगे। मैं कहूँगी तो आपको मुझपर यकीन नहीं होगा। पर यह सच है। मेरे सपने को, मेरे परिवार को एक बदमाष हिंदू मनोज ठाकुर रौंदनें की कोषिष की थी, पर हम कभी टूटे नहीं थे। आज साल भर रहते यहाँ हो गए। मीरगंज ने मुझसे इसकी जो कीमत वसूल की वह कहने लायक नहीं है। और न मैं कहूँगी। हाँ, जब्बर खाँन की उस गंदी नियत की कथा आपको जरूर सुनाना चाहूँगी। उसी से शायद आप सबकुछ जान व समझ जाएँगें। और आप भी होषोहवास

में पूरी तरह आ जाएँगे। ऐसा मेरा यकीन है। लेकिन वाकया दो साल बाद की है। और ताजिये के दिन का। अमीर और उसके अब्बू ताजिया देखने निकले थे। गली के बहुत सारे लड़के, आदमी और औरतें घर से बाहर थे। उस ताजिया में आगे–आगे जब्बार खाँ चल रहा था। कोई तलवार, कोई डंडा कोई पैंतरे दिखा रहा था। बीच–बीच में लोग छाती पिटते तो रूहें निकल जातीं। उस भीड़ में जब्बार भी रो रहा था। तभी मेरे आँगना सलेहा आई और हमसे बतियाने लगी– कसेया गाँव के बारे में वहाँ के लोगों के बारें में। फिर उसने मुझसे पूछा– ''बाजी वह गाँव छोड़कर तुम मीरगंज में क्यों आई हो? मैं इस पर चुप रही। बस इतना ही कहा कि –''हमलोग वहाँ बहुत कम थे। वहाँ नमाज पढ़ने के लिए मस्जिदें भी नहीं थी। हमलोगों का जब भी त्योहार आता, यहाँ जैसा नहीं लगता था।'' तभी उसने टोका –''यह कोई बड़ा कारण तो नहीं है बाजी। क्या इतने भर से कोई अपना गाँव छोड़ देता है। हमारा तो गाँव है, यहीं ससुराल। पर, मैं यहाँ से कहाँ भागी। उस जब्बर का अत्याचार सुनोगी तो दंग रह जाओगी। मेरे तो ठेला चलाते चलाते मर गए। वह कर्ज जब्बार से लेते थे। जब्बार पैसा उन्हें नहीं, मेरी सूरत पर देता था। आज उन्हें मरे हुए पाँच साल हो गए। पर, उनकी यादें गईं नहीं। वे कितना सच्चे इन्सान थे। गरीब थे मगर अल्लाह के नूर से थे। पर यह जब्बार बार–बार अकेले में देखकर शर्त लगाता है –''जानेमन सलेहा या तो मेरे पैसे पूरा–पूरा दे दो, नही ंतो एक रात.....।'' आपही बताओं बाजी क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? लगता है– कहीं डूब मरू! कहते कहते सलेहा सिसकनें लगी। इस पर रजिया ने उसे गले लगा लिया पूछा –''जब्बार के कितने रूपये शेष है? ''तीन हजार''

'' तो लो यह मेरी दोनों सोने की कनबालियाँ और इसे बेचकर, पूरे पैसे दे दो।''

सलेहा, रजिया को देखकर खुष थी और रजिया बड़े प्यार से अपने दोनों कान की बालियाँ उतार रही थी। उसे लग रहा था कि वह बहुत नेक कार्य करने जा रही है।

कनेर के फूल

बहुत दिन बाद गुनगुनी धूप खिली थी। उसे देखकर कनेर के फूल विहँसे थे। उसके एक–एक पत्ते रोम की तरह पुलकित हो उठे। जैसे कडाके की ठण्ड से गिलहरी को सूरज की हल्की तपन रोमांस से भर देती है। ठीक उसी तरह कनेर के सारे फूल रोमांचित हो उठे थे। वे सुनहरी पीली धूप के गले मिलने को आतुर– व्याकुल थे। पर, अगले पल उसकी सारी आतुरता,उत्सुकता दब सी गई और पंख की तरह अपनी पत्तियों को समेटना शुरू कर दिया। धूप को उसका सिकुड़ना अच्छा नहीं लगा। वह चाह रही थी कि कनेर उमंगे, विहँगे और उससे देर तक बातें करे, पर ऐसा हुआ नहीं। वह बडी देर तक उसे निहारती रही कि कुछ तो बोले। पर कनेर की गहरी चुपी उसे खलती रही, उसे कचोटती रही। धूप अपने को मरी हुई समझ रही थी कि आखिर ईष्वर ने उसे बनाया ही क्यूं है कि वह किसी की जिंदगी में आ नहीं सकती। कनेर के प्यार को वह कभी भूल नहीं पाई। हजार वर्षों की जैसे उससे रिष्ता हो। उसका संपूर्ण प्यार कनेर के पत्तों, फूलों, पत्तियों,टहनियों, छालों को समर्पित हो जाना चाहता था; पर चाह कर भी नहीं हो पाया। समाज की बंदिषें, वर्जनाएँ, पिता का प्यार, माँ की ममता एवं परिवार की इज्जत उसे बाँधें हुई थी। सूरज की बेटी थी वह चाँद की तरह जीना चाहती थी, पर बादलों की घनघोर घटा उसे खेलने नहीं देती थी और बार–बार वह मर –मर जाती थी और कनेर जिस दिन आकाष में बादल रहते निराष हो जाता, उसकी उदास सांसे थम सी जाती। जोरों का हिलता जैसे वह तूफान बनकर पृथ्वी को, आकाष को, सूर्य और तारों को निगल जाना चाहते हो, बर्बाद कर देना चाहता हो, पर अगले ही पल उसका अपने ही अस्तित्व का ख्याल आता, तो वह खुद को मसोसकर रह जाता। उसके पांव तले धरती थी, जिसका वह बहुत इज्जत करता था, वह जानता था कि उसका अस्तित्व इस धरती से है अतः वह उसे बार–बार पूजता। किन्तु अपने प्यार से दूर रहकर बिल्कुल अस्तित्वहीन–सी उसकी जिन्दगी हो गई थी वह जीने से मरना बेहतर समझता फिर भी वह मरा नहीं जिंदा रहा। यह बात धूप को अच्छी तरह मालूम थी। धूप बार–बार कोषिष करती कि कनेर कुछ तो कहे, कम से कम बोले तो। वह नहीं चाहती थी कि उसके बिना कनेर उदास रहे, सिकुड़ा रहे। उसकी जिंदगी में जम आई काई को वह हटाना चाहती थी। बहुत मान मनौवल के बाद कनेर अपनी चुप्पी तोड़ा था। पहले बहुत झिझका, कुछ सुनना चाहती थी। इसलिए उसके और समीप आ गई। हौले से अपनी नर्म अंगुलियों से कनेर की पत्तियों को सहलाया और कनेर अपनी सारी बातें एक–एककर कह डाला। बुरी–भली सब। पूरे पाँच घंटो का लंबा संवाद। उसके अंतस् की पीली धूप की किनारियाँ बन चहक रही थी। धूप को सारी बातें सुनकर कुछ आराम मिला। वह कनेर को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाह रही थी। इस बार माता–पिता,परिवार–कुटुम्ब सब छोड़कर कनेर के बगीचे में हमेषा–हमेषा के लिए डेरा डालकर उसकी बाँहों में आराम करना चाहती थी। उसकी आँखों में आँसू की बूँदें थी, जो बार–बार कोमल करकों से गालों पर मोतियों सा लुढ़क जाते। कनेर उसे अपनी प्यारी कोमल अंगुलियों से पोंछता। जब–जब आँसू पोंछता। धूप उतनी बार पुनःजी जाती। उसका सीना धड़कने लगता। कभी थम जाता। कभी उमंग जाता। दिन में पूरे पाँच घंटों में वह संपूर्ण जीवन खण्डों को लगा जी ली। अपनी साँसों में कनेर के फुलों की खूष्बू भर ली। मगर ज्यों ही गिरजाघर के घंटे बजे वह पुनः मर गई।उसे लगा, उसके पिता बुला रहे हैं। शाम हो

चली है। बेटी घर चलो। कुछ समय के लिए वह कनेर के पत्तों में ओट हो ली। सूरज अपनी किरणों को समेट रहा था। नहीं चाहकर भी उसे कनेर से दूर होना पड़ा। कनेर अभी भी रास्ते पर उसका इंतजार कर रहा है ....। धूप ज्यों–ज्यों दूर होती जा रही थी उसे लग रहा था कि वह अस्तित्वहीन हो गया है और अंधकार गहरा होता जा रहा था। उस अंधकार में कनेर सिर्फ अकेला था। उसकी धूप सिर्फ ख्वाब बनकर रह गई थी। तभी पानी का बोसा उसके चेहरे पर आकर गिरा। वह वर्तमान में आया! बादल गरज रहे थे .... बिजली कड़क रही थी। धूप दूर–दूर तक उसे दिखाई नहीं दे रही थी। और कूछ दूर दोनों इंसान के शक्ल में बदलने लगे। ऐसा लगा। किंतु अंधकार उन्हें पूरी तरह निगल चुका था।

कोई घंटे भर बाद बारिष थमी थी। आकाष हल्का हुआ था। आसमान पर चाँदनी छीटक रही थी। कनेर उस चाँदनी रात को बड़ी देर तक निहारता रहा। वह आज सो नहीं पाया था। उसके मन अभी पूरी तरह हल्के नहीं हुए थे। वह बहुत कुछ सोच रहा था–धूप के बारें मे कि वह बगैर धूप के जी नहीं सकता। धूप उसकी जान है। भले ही जब उसकी धूप से अनबन हो जाती है; वह भी कड़ी होकर उसे जलाने लगती है; किंतु धूप बूरी नहीं है। वह है, तो उसका अस्तित्व है। वरना, वह पनप भी न पाता! खिलने की बात तो दूर की है! वह जानता है–धूप के पिता भी बहुत अच्छे हैं। वे बेटी की खुषी में अपना खुषी स्वीकार करेंगें। किंतु बरसों से चली आ रही कूप्रथाओं, बंधनों, बर्जनाओं को तोड़ने की हिम्मत उनमें नहीं जग रही है। उनकी बिरादी व समाज वाले उनसे रिष्ता तोड़ लेगें, खान–पान छोड़ देंगें! इसी डर से वे कतराते हैं। मेरी तो किस्मत ही फूटी नजर आ रही है। पर, किस्मत को दोष देने से क्या फायादा? किस्मत तो बदलने वाली चीज है। वह आपके हाथों में है। आप ही उसके कर्त्ता भी हैं और कारण भी। वह चाहता है उसका देष इन सभी दकियानूसीपन से बाहर निकले। वह नये युग का नया सवेरा है। समझदार है, इसीलिए उसने प्रण लिया है वह टूटेगा नहीं। प्रयास करेगा। और प्रयास से बहुत कुछ हासिल होता है। अंग्रेज अपने देष में आए थे, उस घड़ी लोग सोये भी नहीं थे कि वे एक दिन भागेंगे? पर वे भाग गए! हमारे मर्यादा पुरूषोतम राम जी की सीता खो गई थीं, उनका अपहरण हो गया था। राम जी उस वक्त सोचे भी न थे कि इन वनों में बंदर–भाल का सहयोग मिलेगा और एक दिन रामेष्वरम् सेतु का निर्माण समुद्र पर होगा, रावण मारा जाएगा और माँ सीता घर वापस आएँगी। पर, ऐसा ही हुआ। कनेर सोचने लगा वह रावण रूपी समाज से लड़ेगा। जाँति–पाँति मिटाएगा और एक मधुर संसार बसाएगा। जहाँ सभी को अपनी–अपनी हिस्से की धूप हासिल होगी, सभी खुष रहेंगे। उसकी अपनी धूप भी मिलेगी। तभी वह देखा कि आसमान में कुछ बादल पुनः उमड़ने लगे थे, किंतु चाँद अभी दिख रहा था। हाँ, उसका रंग अब नीला दिख रहा था। वह नीला चाँद पहली बार देखा था। अद्‌भुत नीला चाँद। उसे लगा यह संयोग है कि दुर्योग कह नहीं सकता। पर, एक गहरा संकेत जरूर है। कभी वह बनारस के दसाष्वमेघ घाट पर खड़ा था। बड़ी शान से गंगा की लहरों को देख रहा था। पहली दफा गुनगुनी धूप से उसकी मुलाकात वहीं हुई थी। मछली मारते मल्लाहों ने उसे गंगा की लहरों से छानकर लाए थे, वरना उसका अस्तित्व वहीं खतरे में था; पर दैव–योग से वह बच निकला था। और उसे बड़े प्यार व हषरत से गंगा के उच्चे भींड पर रोप दिए थे। तब वह बिल्कुल मुरझा गया था। पर, अगली सुबह सूर्य

निकले थे। सूर्य की किरणे निकली थीं धूप बनकर और उसका प्राण बच गया था। तब से वह तकरीबन तीन साल तक इसी घाट पर विरजमान ठंडी और हल्की हवाओं के झोंको के साथ धूप के साथ गलबहियों कर पूरा दिन मस्ती में झूमता रहा है। पर, दिन सारे एक जैसे नहीं रहते। जिस तरह कुछ ही पहले यह आकाष बिल्कुल निरभ्र हुआ था और पुनः काली घटाएँ घिरने लगीं थी; ठीक उसके जीवन में भी वह पहली काली रात आई थी। हालांकि, प्रकृति का रहस्य यहीं है और यहीं इतिहास भी अंधेरों के बाद उजाला होती है, और उजाले के बाद अंधेरा। इसलिए बहुत विचलित होने की जरूरत नहीं है। वह बुरा दिन देख चुका है। हाँ, दषाष्वमेघ घाट पर पक्के की सीढ़ी बनाने का काम चल पड़ा था। उन दिनों पर्यावरण संरक्षण पर इतना जोर न था। अतः हमारी सुरक्षा कौन करता? सरकार भी हम पर ध्यान नहीं देती थी न ही गंगा मईया की सफाई पर। मुझे तो लगता है– यह साफ–सफाई और पर्यावरण संरक्षण का राजनीतिकरण हो गया है। वरना चुनाव के मौसम बीतते ही भला बड़े–बड़े दिग्गज नेता इसे क्यों भूल जाते हैं? गंगा की लहरों पर सैर करने की बात तो दूर, वे अब दर्षन करने भी नहीं आते हैं। और तो और गंगा मईया के आगे माथे टेकना है कि नहीं यह भी इन्हें याद नहीं। और मेरे जैसे छुद्र पौधे को लोग काटकर फेंक देते है; क्योंकि उनकी नजरों में उपयोगी नहीं हूँ मैं। पर मैं पूरी तरह काटा नहीं गया। सीढ़ी के निर्माणकर्ताओं ने मुझे जड़ से उखाड़कर फेंक दिया था। मेरी धूप मुझे देखकर तड़प गई थी और मुझसे पूरी तरह लिपट गई थी। वह मुझे अकेला छोड़ना नहीं चाहती थी। पर, उसकी तड़पन को किसी ने भी नहीं देखा। बड़े–बड़े पंडित व साधुजन भी नहीं। उनकी नजरों में मैं रास्ते का रोड़ा था। अतएव उखाड़ दिया गया। धूप मेरी फूलती साँसों को देखकर बहुत जोरों से सुबक रही थी। पर, उसकी रूलाई को देखने की दृष्टि किसी में भी नहीं थी। ठीक ही कबीर ने कहा है –'' पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े से पंडित होय।'' और वह पंडित मुझे मिल गया। उसी सीढ़ी के पास एक भीखारिन रोज भीख मांगती थी। हालांकि, उसके दिन इतने पातर थे कि कभी भी उसे भर पेट भोजन नहीं मिले थे। जबकि बनारस में पंड़ों और साढ़ों को आप देखेंगे तो देखकर दंग रह जाएँगें। दृष्ट–पुष्ट और मोटे ताजे। यहाँ रोज घी के दिये जलाते हैं। बड़े–बड़े सेठ–साहुकार यहाँ आतें हैं। और मंदिरों में हजारों करोड़ो का दान देकर जाते हैं। कई विदेषी सैलानी भी आते हैं– वे भी हर–हर महादेव की नारा हिंदुओं की तरह लगाते हैं। उनके मुँह से महादेव का नाम सुनकर जी खुष हो जाता है। पर, आरती के बहाने, कषी के इतिहास बताने के नाम पर ये पंडे और टूरिस्ट गाईड उनसे खूब लूटते हैं। दस की जगह बीस और सौ की जगह हजार! मुझे यह बहुत बुरा लगता था; पर बुरा लगने से उनका क्या बिगड़ता है? आस्था के नाम पर अच्छी चीजों को भी लोग बुरे बना रहे होते हैं, और उन्हें यह समझ में नहीं आती कि वे कितना बड़ा धोखा संस्कृति को दे रहे हैं। जो संस्कृति हमारी जान है, हमारी रीढ़ है। कनेर उस रात्रि को यह सब सोच नहीं रहा था; बल्कि सारी बातें संध्या समय धूप के जाने के बाद उसे बार–बार याद आ रही थी। मन ही मन वह उस भिखारिन को वह धन्यवाद भी दे रहा था, जो अब इस दुनिया में नहीं है। जिस दिन वह गुजरी थी। उस दिन उसके तन पर ठीक से चिथड़े कपड़े भी न थे। हवा भी देख शर्मा गई थी। उसने हमारी सुखी पत्तियाँ को साथ दिया था और हम उस भिखारन माँ का तन मिलकर उस दिन ढ़ाकें थें। और मैं उस दिन बहुत रोया था। उसी ने मुझे दसाष्वमेघ घाट से उठाकर अपनी कठोर चौरा के पास झोपड़ी में

ले गई थी। जो निहायत गंदा था, फिर भी वह हमारे लिये काबा था, कैलाष था। और वहाँ मैं पुनः नया जीवन पा गया था। मेरी धूप ने उस बुढ़िया–माँ को बहुत आषीष दिए थे। काषी विष्वनाथ को धन्यवाद कि उसका प्यारा कनेर बच गया था, उसका जीवन बच गया था। जीवन देने वाला छोटा था या शूद्र नहीं होता वह महान होता है। तब, से रोज वहाँ धूप हमसे मिलने आती। उसकी सहेली हवा जब वह साथ रहती, कुछ दूर ही रहती। कारण कि वह किसी के प्यार में खलल डालना नहीं जानती है। उसे पता है कि प्यार कितनी बड़ी चीज है। गंगा की दुलारी, हिमालय की प्यारी उस हवा को मेरा शत्–षत् नमन। क्योंकि, वह हमें प्राण वायु देती हैं। वह मेरे लिए क्या कुछ नहीं है! अभी आकाष में बादलों के साथ, हवा उमड़ी। मैं थोड़ा सिहरा। हवा ने मुस्कुरा दी। मैंने हाथ जोड़ लिया। उसने हमसे कहा –'' धैर्य रखो! कलपुनः सुबह होगी। धूप से मिल लेना!''

मेरे पास आओ तो!

वहीं दो–चार घर थे। जिसे आप गाँव नहीं कह सकते थे। लोग उसे टोला कहते थे। राघोपुर का टोला। कुछ लोग तो कहते थे कि असल राघोपुर आज का वहीं नोनियों का टोला है। एक ब्राह्मण से शापित होकर उजड़ गया था। वरना बहुत आबाद था। बात कहाँ तक हकीकत थी। इसे वह आज तक सही–सही नहीं जानता है। पर कुछ यादें हैं। इस बार मैं दषहरे की छुट्टी में अपने गाँव से पैदल ही सुबह–सुबह निकल गया। कोई पंद्रह मिनट पैदल चलना पड़ा था मुझे, हलाँकि यह दूरी मेरे लिए कोई बहुत अधिक नहीं थी; क्योंकि मेरा अधिकतर बचपन गाँव में ही बीता है। तब कोई आधा घंटा पैदल चलकर स्कूल जाना पड़ता था और लौटते वक्त भी अच्छा–खासा मनोरंजन करते हुए हमलोग गाँव लौट जाया करते थे। उसी के बीच रास्ते में यह नोनियों का टीला पड़ता था। उस पर पीपल का एक विषाल वृक्ष था– जिससे हमलोग बहुत डरते थे– हम साथियों ने उसे 'भूताहा पीपल' नाम दे दिया था। कारण कि उस पीपल के बारें में तरह–तरह की अफवाहें फैलाई गई थी। कोई कहता था कि किसी जमानें में किसी डाईन ने आधी रात को मंत्र सिद्धि करने के लिए यहीं उपयुक्त जगह चुनी थी और यहीं सुबह लोगों की आवाज सुनकर छोड़–छाड़कर चली गई थी। कुछ लोगों में एक काविलास रैदास भी थे, लोग कहते हैं, डाईन को भागते वक्त वह देख लिए थे; वह बिल्कुल नंगी थी और डाईन ने भी उन्हें देख लिया था। उसके पास मंत्र थे। गोस्से में उसने कविलास रैदास की ओर देखे थे। कविलास अभी बूढ़े नहीं हुए थे; पर उस रोज से वह बीमार रहने लगे। देह पियराने लगी और वे मर गए। कुछ लोग कहते हैं कि वह पीपल पहले से वहाँ मौजूद था, उस पर एक 'मर्ही' रहती थी और उसने कविलास जी को अँकवार दे दी थी और वह मर गए थे, तो कुछ लोग कहते हैं, –वह एक किचिन थी; उसे लोग कम ही उम्र में एक बाहरी आदमी के प्रेम करने के अपराध में मार दिए थे; उसी ने कविलास रैदास को पकड़ा था, और उन्हें जीव लेकर ही मानी। हमलोग भी नहीं चाहते थे कि उस पीपल पर की उस प्रेतनी की कुदृष्टि हमलोगों पर पड़े और हमलोग सरग–सिधार जाएँ। मौत से डर भला किसे नहीं लगता। इसलिए हमलोग अक्सर आते–जाते उस रास्ते से जुदा होकर 50 फीट दूर दूसरे रास्ते या आर से गर्दन नीचे किए हुए जाते और गर्दन नीचे किए हुए आते। लेकिन, बरसात के दिनों में वहीं एक पीपल के पेड़ से होकर गुजरने वाला रास्ता ही था जिससे होकर हम स्कूल जाते। लेकिन डर के मारे हमलोग बारिष का बहाना बनाने में भी खूब होषियार थे। लेकिन इन नोनियों को देखकर न जाने मन में यह बात भी अक्सर आया करती कि कि आखिर इनलोगों को वह पीपल वाली भूतिनी क्यों नहीं डराती या पकड़ती। तभी हम ही लोगों में से कोई कहा था कि वह टीले पर ब्राह्म–बाबा का चबुतरा देख रहे हो न, उसे नोनिया लोग पूजते हैं। इसीलिए ब्रह्म–बाबा उनकी रछेया करते हैं। तभी कोई लड़का ब्रह्म–बाबा की किस्सा कहने लगता –ब्रह्म बाबा जाति के ब्राह्मण थे, उन्हें ऊख बहुत पसंद था। आहन के कोलियों ने उन्हें पाँच ऊख दे दिए थे, जजमनिका में। वह अपने पोते के लिए उसे ले जा रहे थे; तभी उन्हें थकावट महसूस हुई और इसी राघोपुर के पीपल के पास गमछी बिछाकर आराम करने लगे, तभी उन्हें नींद आ गई। बगल में नोनियों के बच्चे गिल्ली डंडा खेल रहे थे; वे उन्हें चटकर गये। जब उनकी नींद खुली तो ऊख नहीं थे। उन्हें बड़ा क्रोध आया। और अपना ऊख मांगने लगे। लाख मनाने पर भी नहीं माने

तभी एक जवान नोनिया उन्हें लाठी दे मारा और वे मर गए। लोग कहते हैं – जब उनका प्राण निकल रहा था, तब वे बड़बड़ा रहे थे कि बच्चों को माफ करता हूँ; पर जो नोनिया हमारी पूजा नहीं करेंगे वे बेचिरागी हो जाएँगें। इस पर कुछ नोनिया हँस दिए थे। कारण कि वे ब्राह्मण विरोधी थे। और सचमुच वे लोग उजड़ गए, बेचिरागी हो गए। समझदार नोनियों में से यही चार घर उनसे माफी माँगे थे और पूजने के लिए हामी भरे थे; वही बचे हैं। वरना ये भी कब के उजड़ गए होते। इस पर मैंने अपने साथियों से कहा था –''तब तो हमलोग भी उन्हें पूजेंगे तो यह पीपल पर की प्रेतनी हमारी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी।'' मेरी बात पर मोहना बहुत खुष हुआ था और उसने मुझसे कहा –''हाँ, यार नाहक हमलोग डरते थे। कल से हमलोग एक–एक अमरूद लाकर बाबा पर चड़ाएँगे और इसी रास्ते से रोज स्कूल जाएँगे।'' फिर क्या था अगले दिन से हमलोग रोज उसी रास्ते से स्कूल जाते, अमरूद चढ़ाते, कभी गुढ़, कभी कच्चा चावल। और हमलोग भी थोड़ी सुस्ती मिटाने के लिए उस पीपल के पेड़ के पास, नोनियों के टोले पर, ब्रह्म बाबा के टीले पर आराम करते और खेलते। अब धीरे–धीरे हमलोगों का डर उस पीपल से गायब हो गया। तबतक हमलोग मैट्रिक पास कर आरा पढ़ने चले गए और आज लगता है, हमलोग उन दिनों क्या उल्टा–सीधा सोचते थे!

आज गाँव पर आए हुए ग्यारहवाँ दिन है। दषहरे के प्रथम दिन ही से गाँव आया हुआ हूँ। माँ अब नहीं है। वरना, वह मुझे घर से बाहर निकलने नहीं देती। आँख और ढ़ोड़ी (नाभी) में काजल जरूर लगाती। पहले लोग डाईन से बचने के लिए अक्सर लोग बच्चों की नाभि में काजल लगाते या कोई काला धागा बाँधते। पर धीरे–धीरे यह सब गाँव से निकल गया। यहाँ भी अब मोबाईल टावर दिखने को मिलने लगे हैं और घर–घर टी.वी. और मोटर साईकल। आरा रहते हुए अखबार में पढ़ा था सन् 2002 के आस–पास कि रोहतास जिला के राघोपुर गाँव में ब्राह्मणों और नोनियों के बीच काफी तनाव बढ़ा है। बैकवर्ड–फारर्वड की जहर हवा में बहुत तेजी से फैल गई है। बैकवर्ड अपने को नीच सुनने के लिए तैयार नहीं है और फारवर्ड उन्हें सम्मान देने से अभी कतराते हैं। ब्राह्मण लोग तो बहुत सीधे–साधे लोग होते हैं। किसी मुखिया के प्रभाव में वे आ गए थे। उनके पास हथियारें आ गई थीं और एक रात राघोपुर के उस टोले पर हमला कर दिया गया था। नोनियों एवं उनके बच्चे को काटकर झोपड़ी में आग लगा दी गई। लंका दहन हो गया। पर यह किसी बंदर द्वारा नहीं किया गया था; बल्कि बंदर की आधुनिक पीढ़ी के द्वारा यह सब कारामात संपन्न हुई थी। उस दिन जैलेंद्र कुमार का ऐसी खबर पढ़कर होष उड़ गया था। वह राघोपुर से अच्छी तरह परिचित था। उसकी आँखों के सामने बचपन की वह सारी स्मृतियाँ जिंदा हो उठीं। उसे लगा –''वह भूतही पीपल उसे बुला रहा है, कुछ कहने के लिए,कुछ बतियाने के लिए, कुछ देने के लिए।'' उस दिन जैलेंद्र कुमार सोच रहा था – एक दिन वह भी था, जब उसके दादा राम टहल सिंह महतो अंग्रेजों से इसलिए लड़ रहे थे कि अंग्रेज यहाँ से जाएँ तो अमन और चैन यहाँ के लोगों को मिले। और आज वह क्या पढ़ रहा है। उसके दादा अब नहीं हैं। हाँ, वह विद्यालय अभी भी है। वह इस बार दषहरे में जब गाँव आया, उसके पाँव बरबस उस राह की ओर निकल पड़े जो बचपन के साथी रही और वह पीपल जहाँ वह बचपन में पढ़ने जाती बेर सुस्ता लेता था, जाने को विवष हो गया। और उस पीपल तक पहुँच गया, पता भी न चला। पर, उस पीपल को देखकर जैलेन्द्र की आँखें आसूँ से

भर गईं। वह भी उन झोपड़ियों के साथ जल गया था। जिस पर एक भी चिड़ियाँ नजर नहीं आ रही थीं, जिस पर कभी तरह–तरह की चिड़ियाँ रैन बसेरा करती थीं,– गौरैयाँ, मैना, तोता और नीलकंठ!!!

राम के वारिस

चारों तरफ बाग ही बाग थे। दूर से देखने पर कोई गाँव नजर नहीं आ रहा था। फिर भी उस बाग से होकर एक पतली पगडंडी गुजरती थी। जो नोनार को जोड़ती थी। उस वक्त नोनार भी एक छोटा गाँव था। जहाँ कई जाति के लोग रहते थे। जीविका के मुख्य साधन कृषि ही था। कृषि के लिए कोयरी और कुर्मी ख्यात जाति थी। अंग्रेज इन्हें कृषि की रीढ़ एवम् औद्योगिक जाति के तौर पर चिन्हित किया करते थे। उनका ये मानना था कि ये ही दो जातियाँ समाज के आधार स्तंभों में से थीं, जिस पर पूरे समाज का पोषण निर्भर था। पर न जाने क्यों भूमिहार लोग उनसे जलते थे। नोनार और बैसाडीह की कहानी कोई बहुत पुरानी तो नहीं; किंतु बहुत नई भी नहीं थी। आज जहाँ बैसाडीह है; वहाँ डेड़ सौ साल पहले सिर्फ बाग ही बाग थे। वहीं पर कोयरियों का पाँच घर आकर हर्षवर्धन की मृत्यु के बहुत बाद में कन्नौज से आकर बसा था। वे लोग स्वयं को कुषवंषी कहते थे। पर, भाग्य का मारा क्या से क्या हो जाता है। मुसलिम शासकों के अत्याचार से तंग आकर पहले उन्होंने अपना जनेऊ पहनना छोड़ा और फिर इज्जत देने की बात आई तो कन्नौज छोड़कर वे दूसरे प्रदेषों में भाग निकले। पर, अपनी इज्जत गँवाकर, अपना धर्म गँवाकर जीना उन्हें मंजूर न था और न ही मुस्लिम बनना।

आज मैं उसी बैसाडीह की कथा आपको सुनाने जा रहा हूँ। इस कथा को भोजपुर के एक महिला ने सुनाई थी; जो बहुत गोरी–चिट्टी एवं नाक–मुँह से सुंदर थी। आप यह सुनकर पूछेंगें कि क्या वह जवान थी तो निरासा हाथ लगेगी; वह अब बूढ़ी हो चुकी थी। उसके दाँत झड़ चुके थे। वह महिला आरा से सासाराम जाने वाली ट्रेन पर मुझे मिली थी। उसके साथ तीन बच्चे भी थे, जो नाते में उसके पोते लगते थे। वह खिड़की से कभी इधर, कभी उधर देख रहे थे और अपनी दादी से पूछ रहे थे कि यह कौन गाँव है और वह कौन गाँव है? वह बूढ़ी महिला कुछ गाँव को देखते ही पहचान जाती थी और चट गाँव के नाम बता देती थी। पर कभी–कभी उसे अपने दिमाग पर बहुत जोर देने पड़ते थे; तब जाकर बड़ी मुष्किल से वह गाँव का नाम बता देती थी। और कभी–कभी वह बिल्कुल कुछ न बोल पाती थी; पर उसके चेहरे की भंगिमा बता रही थी कि उसे कुछ दुःख अनुभव हो रहे हैं। पर, वह बच्चों से दुःख के बारें में कुछ बता नहीं रही थी। बच्चे भी ट्रेन की लुफ्त उठा रहे थे। उसे क्या पता कि उसकी दादी के अंदर क्या बीत रहे हैं? मैं भी उसी ट्रेन पर आरा से मोहनियां जा रहा था, उस बूढ़ी महिला के आगे वाली सीट पर बैठा था। ट्रेन में भीड़ नहीं थी; इसलिए मैंने पूरी पालस्थी मारकर आराम से एक किताब पढ़ रहा था। तभी मेरी नजर उसी बूढ़ी महिला जो मेरी दादी की उम्र की थी; पर गई और बच्चों को उनके सवालात के उत्तर देता सुना। मुझे न जाने उस बूड़ी औरत की आँखों में देखकर कुछ अजीब–सा लगा। लगा की कोई अतीत उसका पीछा कर रहा है। पर, हिम्मत नहीं हुई कि कूछ पूछूँ। ट्रेन आगे की ओर दौड़ती रही। कुछ बाग कुछ गाँव एक–एक कर पीछे छूटे जा रहे थे। मेरे अंदर एक अजीब–सी बैचेनी बढ़ती जा रही थी। बच्चे ट्रेन के अन्दर से ही टाटा–बाय–बाय करते जा रहे थे। अब मुझे पढ़ने में मन नहीं लग रहा था। किताब को अपने बैग में रख दिया। तभी ट्रेन एक जगह रूकी। मैंने इधर–उधर देखा, कोई

स्टेषन वहाँ नहीं थी। कुछ लड़के जो कॉलेज से पढ़कर लौट रहे थे; गाड़ी वैकम्प पर दिए थे। तभी उस औरत ने पूछा –''बेटा, यह गाड़ी बीच में ही क्यूँ रूक गई?'' मेरे लिए एक बहाना मिल गया। मैंने कहा –''लड़के वैकम्प कर दिए हैं –दादी माँ।'' इस पर उन्होंने कुछ नहीं बोला। बस 'हूँ' कहकर चुप हो गई। उन दिनों अक्सर गाड़ी रोकने के लिए वैकम्प नौजवान लड़के करते थे। फिर मैंने ही, बात आगे बढ़ा दी –''दादी माँ, कहाँ जाना है? ''बिक्रमगंज बेटा'' उन्होंने कहा।

''बहुत खूबसूरत लग रही है यह जगह''

''अब कहाँ लग रहा है, बेटा। पहले इससे भी सुंदर लग रहा था।''

''हाँ, बहुत सुंदर?''

''हाँ बेटे बहुत सुंदर। मेरे पूर्वज इसी भोजपुर के थे। मेरी ननिहाल कतकीनार थी। अक्सर गाँव से ननिहाल इधर से बैलगाड़ी पर जाया करती थी। जगह–जगह कनैल के पीले–पीले फूल बहुत प्यारे लगते थे। कहीं पलाष के बाग थे, तो कहीं महुए की, तो कई जगह पीपलों की।''

''तब तो बहुत माजा आतो होगा, बाग की पक्षियों को देखकर।'' ''हाँ, बेटे मेरे घर के आस–पास पीपल, बेर, आम, महुए व पलास के पेड़ थे। हमलोगों का घर बैसाडीह था। नोनार के पास। वहीं के हमारे प्रदादा थे। रघुनी सिंह कुषवंषी। कन्नौज से उनके पितामह यहाँ आकर बस गए थे। बाग में मोरों का बड़ा कुनवा निवास करता था। उन्हें न जाने क्या लगा कि भोजपुर के बाग में ही वे कन्नौज के दर्षन कर रहे थे। वे पाँच भाई थे। पाँचों छह–छह फुट लंबे। उनमें तीन तो बुद्ध की तरह गोरे थे और दो गेंहुए रंग के। पर, उनकी पत्नियाँ मुझसे भी ज्यादा सुंदर थीं! मेरा दादा बता रहे थे कि उस वक्त अपने मुलुक में हर जगह मुस्लिमें का शासन नहीं था। हमारे दादा के पाँचों पितामह राजा के सैनिक थे। वीर योद्धा थे। उन्होंने मुसलमानों से खूब लड़ाई की। इनके अपने घोड़ा हुआ करते थे। युद्ध में जाने से पहले माल्हत माई की पूजा की जाती थी।'' इतना कहते हुए अजीब तरह की खुषी उस बूढ़ी महिला के चेहरे पर खिल गई। उसे कुछ संतोष–सा हुआ। पर अगले पल वह गंभीर हो गई। कहने लगी –''समय को कौन जानता है बेटा। मेरे दादा के पितामहों की पत्नियों पर एक कुत्तें की नजर पड़ गई। वह हब्सी की तरह लंबा था। उसकी नाके लंबी थी। लंबा उसका मुँह .....। उस मुंहजरे की नियत खराब हुई। और एक दिन वह हमलोगों के महल में घुसने की चेष्टा की। तबतक, बड़े पितामह ने उसे इतना मार दिया दिया, वह चलने के लायक न रहा। अंत में उसे घोड़े पर सुलाकर दादा के बड़े पितामह ने उसे फौरन लौटा दिया। उस दिन पूरे कन्नौज में कोहराम मच गया कि अष्वमेघ सिंह कुषवंषी ने एक विदेषी सैनिक को अधमरा कर, उसे घोड़े पर सुलाकर फौरन उसे उल्टे पाँव जाने को मजबूर कर दिये। अगले दिन नगर में ढूगी फिरी, कि आज नगर बीच कुषवंषी भइयों द्वारा इसका कबूल किया जाएगा, वे अपना जनेऊ भी तोड़ेगें।'' मजमा शाम को जम गयी। लोग आँखों में आँसू लिए घर से निकले। पर, किसी तरह गमछे से आँसू पोंछ लिए। उन्हें डर था कि शक के आधार पर उन्हें पकड़ न लिया जाए। और उनके साथ भी वहीं होता जो अष्वमेघ सिंह कुषवंषी के साथ होने वाला था। शाम का पहर था। सूर्य अभी डूबा नहीं था। पाँचों कुषवंषी को राज्य

के सैनिकों द्वारा पकड़ कर लाया गया। पर, उनकी पत्नियाँ वहाँ न मिलीं। वह रात ही में इक निष्चित ठिकाना पर निकल गई थी। वह भी तलवार चलाना व घुड़सवारी करना जानती थीं। पर, उनके साथ कोई मानुस घर का न था; यहीं डर था। पर पाँचों स्त्रियों ने कहा कि आपलोग निफिक्र रहिए हमलोग बक्सर मिलेंगे। गंगा के घाट पर। आलोग निष्चिंत होकर म्लेच्छों से डँटिए। मगर, जान बचाकर। वरना, हमलोग फिर कभी नहीं मिल पाएँगे। गंगा मईया की कसम!

फिर क्या था– बेटा। उस शाम बहुत पीटा गया हमारे पूर्वजों को, गालियां दी गई। उनकी पत्नियों को पकड़ने के लिए पीछे घोड़ा दौड़ाया गया। पर, वो कहाँ मिल पाईं और मिली भी तो कोई पहचान कहाँ पाया? दादा के पितामहों से मैला ढ़ोआया गया। सब्जी की खेती कराई गई। उनके जनेऊ उतारे गए। इस्लाम न अपनाने पर नंगे पीठ कोड़ा बरसाए गए। और कहा गया कि पाँच दिन के भीतर तुम अपनी पत्नियों का पता नहीं बतलाओगें तो हाथी के पैरों तले मसल दिया जाएगा। उन पाँचों भाइयों को रात में नसीब से एक कोठरी में रखा गया। पर, सुबह जब कमरे को देखा गया तो वहाँ कोई न था। खिड़की से रोषनी आ रही थी। पर उसकी ऊँचाई इतनी थी कि कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि इससे भी कोई भाग सकता है। और ऐसा ही हुआ। राज्य के सैनिक दादा के पितामह को खोजते रहे; पर उन्हें वे मिले नहीं। तकरीबन एक महीना बाद दादा के पितामहों को गंगा घाट बक्सर में पाँचों देवियाँ भिखारीन के रूप में मिलीं। अलग–अलग समयों पर। उस वक्त बक्सर का पूर्वी इलाका घने वनों से अच्छादित था। भोजपुर के वन उससे सटे थे। और बैसाडीह के जंगल में अपना नाम छुपाकर दादा जी के पितामह लोग बस बए। यहीं खेती बाड़ी करने लगे। उनका अपना कोड़ार हो गया। सम्मानित हो गए। जनेऊ धारण करने लगे। पर, अंग्रेजी काल में मेरे दादा का जनेऊ घारण करना भूमिहारों को पसंद नहीं आया। और एक रोज युद्ध उनसे भी मेरे दादा की ठन गई।

मित्रों, यह कथा कितना सत्य है और कितना असत्य, मैं नहीं कह सकता। हाँ, उस महिला ने मुझसे यहीं कहा था, यह सच है। और उसके पोते गाड़ी में बड़ी गौर से दादी को सुनने लगे थे। उनमें बाल उत्सुकता देखी जा सकती थी; पर उनकी आँखों में। वे अपनी दादी के और नजदीक यानी उनके गोद में आ बैठे थे। तभी बड़े ने देखा कि दादी की आँखों में कुछ आँसू की बूँदें दिखई दे रही हैं; वह उसे पोछने लगा। तब तक ट्रेन आकर बिक्रमगंज स्टेषन पर खड़ी हो गई। मंझले पोते ने स्टेषन के पास लोहे के बोर्ड पढ़ते हुए कहा –बि.क.र.म.गंज। वह बूढ़ी औरत बिना कुछ कहे अपने पोतों के संग स्टेषन पर उतर गई। मैंने उसे उतरते हुए देखा। उसके हाथ में एक मामूली सा झोला था। जिसकी किनारी लाल रंग की थी और शेष भाग बदामी रंग के। गाड़ी दो मिनट वहाँ रूकी, जैसा कि रूकती है और फिर सिटी बजाती हुई सासाराम की ओर चल पड़ी। मैं सोच रहा था कि इतिहास केवल पुस्तकों के पृष्ठों पर ही नहीं फैला है; बल्कि लोगों की जुबानों पर भी फैला हुआ है। पर इसे जानने और लिखने या कहने पर उसे मात्र लोग 'कहानी' का नाम दे देते हैं। पर कहानी क्या इतिहास का अंग नहीं होती? गाड़ी से उतरते हुए मैंने उस बूढ़ी औरत को गौर से देखा था, वह गरीब जरूर लग रही थी; पर उसकी देह–काठी से गौरव झलक रहा था। उसके पोते दूबले न थे, पर उनकी बाल आवाजों में एक कड़क थी। आप कह सकते हैं कि यह आपकी देखने की नजरिया

थी। पर मैंने यह बात नहीं कि। जब गाड़ी बिक्रमगंज से संझौली स्टेषन गई तो मेरे बगल के एक यात्री ने मुझसे कहा, जो चुपचाप आरा से उस बूढ़ी औरत की बात सुनते आ रहा था, जिसका मुझे पता तक नहीं था कि उस बूढ़िया के बच्चे निष्चित रूप से हाड़–गोड़ से किसी उच्चे खानदान के लग रहे थे। मैंने कहा बात उच्चे व नीचे खानदान की नहीं है मेरे मित्र। बच्चे तो बच्चे होते है! इस पर उसने कहा कि हाँ, मेरे कहने का बस इतना ही तात्पर्य था कि उस बूढ़ी महिला की बातों पर यकीं करें या न करें, उसे और उसके पोते को देखकर कोई कह सकता है कि ये लम्बें–चौड़े नस्ल वाले लोग हैं; कुछ–कुछ राजस्थान के लववांषियों की तरह। तबतक मुझे सुप्रीम कोर्ट के उस सवाल की तरफ नजर गई, जब अयोध्या मामले पर यह जवाब मांगी गई थी कि कोई राम का वंषज है, तो दावा करे। मुझे कुषवंषी मिल गए थे। बिहार के रोहतास में। और उस यात्री ने राम के दो पुत्रों में से छोटे पुत्र लव के वंषजों का पता बता दिया था। फिर, मुझे विष्वास सा हो गया कि राम के वंषज आज भी हैं और पूरे भारत में हैं; बस इसकी खोज की जरूरत है। और आज मुझे बिना किसी खोज के, ट्रेन में चलते–चलते वे मिल गए। ऐसा कई बार होता है, अनजाने में भी बहुत सी चीजें मिल जाती हैं जो मेहनत के बावजूद भी नहीं मिल पातीं। उस यात्री ने मूझसे पूछा आप क्या करते हैं –''मैंने बतलाया, मैं एक प्रखण्ड में कलर्क हूँ।'' उसने पूछा कहाँ –''मैंने कहा चेनारी–प्रखण्ड।'' फिर मैंने उससे पूछा कि ''आप क्या करते हैं''? तो उसने बताया कि मैं एक इतिहास का छात्र हूँ। और इसी वर्ष वीर कुंवर सिंह विष्वविद्यालय से इतिहास से एम.ए. किया हूँ।'' मैंने थोड़ा –आष्चर्य व्यक्त किया कारण कि निष्चित ही इस लड़के को इतिहास की अच्छी जानकारी होगी। फिर उस लड़के ने बताया कि –मुझे आज एक सूत्र हाथ लग गई। मुझे कर्नल टॉड की वह बात समझ में नहीं आ रही थी कि कुषवंषी (कुषवाहा) लोगों ने रोहतास गढ़ किले का निर्माण करवाया है। कर्नल टॉड ने यह बताया है कि कुषवाहा, राम के जेष्ट पुत्र कुष के वंषज है। और यहीं कुषवाहा पूरे शाहाबाद जिले में फैले हुए हैं। ऐसे तो पूरे बिहार, उत्तर प्रदेष, मध्य प्रदेष और राजस्थान में भी है, किंतु बिहार में इनका समाजिक स्टेटस राजपूतों – सी वर्तमान में नहीं है और इतिहास में ऐसा होता भी नहीं है कि किसी एक वंष का समाजिक स्टेटस हर हाल में समान बना रहे। जो लोग सत्ता में होते हैं। उनका समाजिक स्टेटस हाई होता है, जो सत्ता से विच्यूत होते हैं– वे निम्न स्टेटस के समझे जाते हैं। मैंने कहा –फिर 'नंद' यानी मेरा इषारा नंदवंष की तरफ था। इस पर उस लड़के ने कहा –''एक जमाना था, जब ब्राह्मण किसी का समाजिक स्टेटस तय करते थे। पर वह समय अब लद गया है। उसे तो बुद्ध ने ही तोड़ दिया था। बुद्ध ने क्षत्रियों को वर्णक्रम यानी समाजिक स्टेटस को बदल दिया था। उनके जमाने में क्षत्रियों का स्थान पहले पायदान पर था और ब्राह्मणों का द्वितीय स्थान पर। आज अखबारों में देख लीजिए कुर्मी अपने को कुर्मी क्षत्रिय के रूप में रि–प्रजेंट करता है और खुद को लववंषी बताता है। अवधिया कुर्मी पूरे भारत में प्रसिद्ध है। रही बात कोयरियों का, तो हमें लगता है कि वे मूलतः कोलिय हैं, जिसका संबंध बुद्ध की माँ से है। कालांतर में हो सकता है कि कुषवंषी (कुषवाहा) लोगों से कोयरियों का संबंध बन गया हो। पहले दो राजघरानों में ऐसी आम बात थी। फिर क्या था – कुषवाहा और कोलिय इतना मिश्रित हो गए कि उन्हें ठीक से अलग करना मुष्किल है; पर दोनों दो भिन्न वंष के हैं। लेकिन उस महिला ने बताया कि उसके प्रदादा के पितामह का नाम आष्वमेघ सिंह कुषवंषी था। जो कुषवंषी होने का प्रमाण है। इस बार गाड़ी नेखागढ़ आकर रूकी थी।

लगभग बीस मिनट तक। सिंगल लाइन होने की वजह से एक समय में दो गाँड़ियां एक साथ पार नहीं हो पाती थीं। इसलिए ऐसे स्टेषन जहाँ दो गाड़ियों के ठहरने के लिए अलग से लाइनें बनी हुई थीं, वे तब तक दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही होती थीं। जबतक कि उसमें से एक फिर चलीं नहीं जाती थी। मुझे सासाराम जल्दी जाना था, क्योंकि वहाँ से चेनारी अभी दूर था। पर, इंतजार की घड़ी खत्म हुई और सासाराम–पटना इंटरसीटी गढ़नोखा पार कर गई। तब हमारी लोकल ट्रेन सासाराम के लिए रवाना हो गई। इस बीच हमदोनों ने कुछ नाष्ता कर लिये। ट्रेन में सामान बेचने वालों का शोर अब थम गया था। मैंने उस इतिहास के छात्र से कहा कि –चेनारी से पहले मैं काराकाट ब्लॉक में कलर्क था अंचलाधिकारी का। तब कोनी गाँव के एक किसान की जमीन का कुछ मामला था। वह अपना खतियान लाया था–पुराना खतियान। जिस पर, जाति–कुषवंषी दर्ज थी।'' इस पर उस इतिहास के लड़के ने कहा –''षोध तो ऐसे ही किया जाता है। मैं शोध की सोच रहा हूँ। आपने एक अच्छी कड़ी जोड़ दी। ऐसे ही बात करते आधा घंटा गुजर गया, तबतक हमलोग सासाराम पहुँच गये थे। वह छात्र उतर चुका था। जाते वक्त उसने अभिवादन किया। मैंने भी थैंक्स' कह हाथ मिलाया। मुझे चेनारी जाना था, इसलिए मैं गाड़ी पर बैठा ही रहा। बाहर हल्की–हल्की बारिष हो रही थी। आसमान में कुहासा–जैसा छाया हुआ था। मेरे पास छाता नहीं था। एक बारगी मौसम खराब हो गया था। वह लड़का कहीं भीड़ में खो गया। मेरी गाड़ी दस मिनट रूकने के बाद एक जोरदार धक्के के साथ आगे की ओर चल पड़ी।

जय हिन्द सर

टी.वी के सामने रंजन यादव सुप्रीम–कोर्ट की फैसले को सुनने के लिए तकरीबन एक घंटा पूर्व से बैठा था। उसे पहले एक दिन मालूम न था कि आज फैसला आने वाला है। वह अपनी दुनिया में खोया था। जिम्मेवारियों से कुछ दबा–सा था। फिर भी जब वह अपने मित्र से यह सुना कि आज अयोध्या मामले पर फैसला आने वाला है–वह खुष हुआ। क्योंकि वह 1992 कही घटना को सुना है और वह नहीं चाहता कि उसका यह देष किसी की नजर में नकरात्मक–छवि वाला बने। वह आज यह भी टी.वी. के माध्यम से जाना कि सबसे पहले सीखों ने अयोध्या मंदिर की दीवारों पर 'राम–राम' लिखे थे। सीखों का राम से लगाव बहुत पुराना है। गुरू नानक का संबंध राम के पुत्र कष के वंषजों से है और गुरू गोबिन्द सिंह का संबंध लव वंषियों से है। जैसे शाक्यों का संबंध कुषवंषियों से है। रंजन यादव इसे अच्छी तरह जानता है। और यह कि आज जिसे हिंदू संस्कृति के तौर पर रेखांकित किया जाता है, वह हिन्दूओं, सीखों, बौद्धों व जैनियों की सामूहिक व साझी संस्कृति का नाम है। तभी रंजन यादव ने उत्तर प्रदेष के जिला मजिस्ट्रेट व कमीष्नर की तैयारियों की बातें भी सुना। उसे लग रहा था कि काष! उसका पूरा हिन्दुस्तान ऐसे ही बैलेंस में जीवन बीताता। हिन्दू–मुस्लिम–सीख–ईसाई–बौद्ध सब आपस में भाई–भाई बनकर दुनियां के सामन जम्हुरियत की नजीर पेष करते। रंजन यादव बड़े ह्रदय का युवक है। वह गाँव में हिन्दू–मुस्लिमों की एकता बनाए रखने के लिए 'राम–रहीम सेवा दल' बनाए हुए है। जिसे गाँव वालों ने शुरू–षुरू में पचा नहीं पा रहे थे, किंतु रंजन के प्यार व दुलार और सोच ने सबको बदल दिया। उसके ही प्रयासों से हिंदू भी ईद मनाने लगे हैं और मुस्लिम होली। हालांकि, उसके गाँव के बगल वाले गाँव के कुछ लोग जो हिंदू ही थे, उससे मिलने एक रात आए और कहने लगे –''यह तू क्या कर रहा है– रंजन। तुम इन मुस्लिमों को नहीं जानता। बहुत बुरें हैं।'' रंजन यादव यह सब सुन रहा था। आँखों के सामने जो चेहरे थे। वे जाने पहचाने थे। उनमें से पलासपुर के वीरेन्द्र यादव थे, रघुनाथपुर के जयचंद तिवारी थे और इस्लामपुर के राघव कुषवाहा। उनकों क्या जवाब दें, यहीं रंजन यादव सोच रहा था। तीनों पिता के उम्र के आस–पास थे। उनके साथ वह पुत्र बनकर ही प्यार से ही वह पार लग सकता था। चूँकि वह अच्छी तरह जानता है कि संबंधों में कड़वाहट पैदा करना अच्छी बात नहीं। वरना लोग सांप्रदायिक राजनीति की ओर अग्रसर हो जाऐंगे। और इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। वाट्सएप के युग में कितनी गलत अफवाहें फैलाई जाती हैं वह अच्छी तरह जानता है। हिन्दुओं के पास अक्सर मुस्लिमों के ऐसे विड़ियो, चित्र व बातें भेजी जाती हैं जो हिन्छूओं के विरोध में हो और मुस्लिमों के पास भी इसी तरह वैसे मैसेज ज्यादा भेजे जाते हैं; जो उनके विरोध मे हो। वाट्सएप का कितना गलत इस्तेमाल हो रहा है, इन दिनों वह अच्छी तरह जानता है। जयचंद तिवारी उससे कल के वाट्स्एप के बारे में बातचीत कर रहा था और बीच–बीच में रंजन जवाब में सिर्फ सिर हिला देता था। जिसका अर्थ या तो हाँ होता या नहीं। इस पर राघव कुषवाहा भी हाँ में हाँ कर रहे थे। उन्होंने कहा कि –''रंजन तुम बुरे नहीं हो। मैं इसी अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारे जिस तरह कृष्ण हैं और तुमलोग कृष्ण के वंषज हो। ठीक उसी तरह हमलोग राम के पुत्र कुष के वंषज है और यह रामजन्म भूमि हमारी है। क्या तुम नहीं जानते कि मुस्लिम लोगों ने उस पवित्र भूमि को बाबर की बता रहे हैं।

क्या बाबर अपने देष का था?'' इस पर भी उसने कुछ नहीं बोला, सिर्फ सुन रहा था। और सोच रहा था –''आखिर ये लोग मुझसे यह सब क्यों कह रहे हैं। हालांकि वह जान रहा था कि –''राम–रहीम सेवा दल' की धूम दिनों पर दिन बढ़ रही थी। पढ़े लिखे नौजवान जो लोकतंत्र में आस्था रखते थे और चाहते थे कि हमेषा–हमेषा के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच का सैकड़ो सालों का झगड़ा दूर हो, वे बहुत तेज गति से सेवा–दल से जुड़ रहे थे। उसके सेवा दल में राजू सिंह, टुनटुन कुषवाहा, उमेष भूमिहार, शैलेष यादव बिटू मोची जैसे हिन्दू छात्र जुड़े थे। वहीं मुस्लिमों में असलम अंसारी, नदीम सैयद, हबीब अली, शेखा मियां और सत्तार महबूब जुड़े थे। गाँव में किसी तरह का फक्संन होता था तो ये सभी नौजवान मिलजूलकर काम करते । चाहे छठ घाटों की सफाई हो, चाहे कृष्णाटमी के समय ठाकुरबाड़ी की सफाई, चाहे ईदगाह का प्रबंध्धन हो। इससे गाँव एक प्रगतिषील दिषा की ओर बड़ रहा था। हिन्दू–मुस्लिम औरतें भी बिना किसी भेद भाव के एक–दूसरे के घर आती–जातीं। इससे रंजन बहुत खुष था। पर इस नयी त्रिवेणी से मिलकर वह जरा अंदर से डर गया। वह सोच रहा था कि वे इन्हें कैस समझाए कि यह दौर बहुत आगे जा चुका है। देष में लोकतंत्र आ गया है और अंग्रेज भी यहाँ से चले गए हैं। फिर यह बात कोई ज्यादा मायने नहीं रखती कि इस मुल्क में कोई हजार वर्षों से रह रहा है कि चार हजार वर्षों से या फिर पाँच या उससे कम वर्षों से रहा है। सभी को संवैधानिक प्रक्रिया के तहत रहना, जीना और व्यवहार करना है, दूसरे का सम्मान करना है। टी.वी. पर यह दिखलाया जा रहा था कि सर्वोच्च न्यायालय के जज रंजन गोगोई अपने आवास से निकल रहे हैं। रंजन यादव टी.वी. भी देख रहा था और उसे पीछले दिनों की यादें भी आ रही थीं। उस दिन उसने वीरेन्द्र यादव से कहा था –''दादा! आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें। और आपकों बता दें (राघव कुषवाहा की ओर इषारा करते हुए) की आप जो कुछ कह रहे हैं, उससे मैं अच्छी तरह वाकिफ हूँ। लेकिन दादा, आज प्यार–मुहब्बत बढ़ाने की जरूरत है। राम अपने जमाने में सेबरी के जूठे बेर खाये थे। आप सोच सकते हैं, यदि उस वक्त मुस्लिम होते तो क्या राम घृणा करते? इसका साफ उत्तर होता 'नहीं'। क्योंकि वह 'पुरूषोत्तम' थे। और रावण तो ब्राह्मण ही था यानी हिन्दू फिर भी राम ने उन्हें वध किया। कारण कि किसी की पत्नी का हरण करने का अधिकार किसी का नहीं है। फिर आप बताएँ दादा कि ये गाँव के मुस्लिम हमारा क्या बिगाड़ें हैं? मिलकर ही तो रहते हैं!'' वीरेन्द्र दादा के पास इसका कोई जवाब नहीं था, क्योंकि इस इलाके में कभी भी हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे या झगड़े नहीं हुए थे। उन्हें भी लगा कि रंजन यादव सही ही कह रहा है। वे लोग किसी दूसरे के कहे के बहकावे में आ गए थे। उसी घड़ी गाँव ही के अकबर मियाँ की बातें भी उसे याद आने लगीं; जो कट्टरपंथी मुस्लिमों के बहकावे में आ गए थे और मुस्लिमों से आग्रह कर रहे थे कि वे हिंदुओं से दूरी बनाएँ। किंतु उनका भी बहुत भद्द हुआ जब एक बाहरी अलगावादी मुस्लिम जो गाँव में नया 'मुकर्रिर' बनकर आया था, उसी ने उनकी लड़की को लेकर फरार हो गया। तब से गाँव के मुस्लिम भी बाहरी कट्टरपंथी मुस्लिमों के बहकावे में नहीं आते अैर कहते हैं –'' भारत के हिन्दू–मुस्लिम एक ही माँ–बाप के संतान हैं।'' रंजन यादव वह घटना जयचंद तिवारी को सुनाया भी था। आज टी.वी. एंकर लगातार न्यूज कवर कर रहे थे। वे भी बैलेंस में थे। राम जन्म भूमि पर फैसला आने में पाँच मिनट शेष था। रंजन यादव के बच्चे घर में ही खेल रहे थे। आज स्कूल नहीं गए थे। इसकी जानकार उन्हें तब हुई, जब वे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे थे।

पत्नी खाना बना रही थी। उसी मिठी खुष्बू रंजन यादव की नाकों तक आ रही थी। उसे लग रहा था –घर में मनभोग बन रहा है। जो उसे बचपन से ही पसंद था। तभी पत्नी मनभोग लेकर रंजन यादव के पास पहुँची। टी.वी. से खबर आ रही थी कि सुप्रीम कोर्ट के जजेज अब कोर्ट पहुंच चुके हैं। अब थोडी देर में फैसला आने वाला है। मनभोग को देखकर रंजन यादव की आँखें खिल गईं। आज वह भी कार्यालय नहीं गया था। डी.एम. साहब का आदेष था कि स्कूल बंद रहेंगें। इसीलिए वह घर ही पर आराम फरमा रहा था। कल तक उसे इसकी भनक भी नहीं थी कि आज के दिन यानी 09.11. 2019 को यह अहम् फैसला आने वाला है। उसने छत पर से खिड की से नीचे झाँका, सबकुछ पहले ही जैसा था। खोमचे वालों ने ठेला गलाया था, दूध वाला केन लेकर साईकल से मस्ती में जा रहा था। जोखना हलवाई की दूकान पर चाय बन रही थी। वहाँ कई लोग इक्कठे चाय पी रहे थे। इधर टी.वी. पर फैसले की रिर्पोट जारी थी। विवादित जमीन रामलाला के पक्ष में आया था। तभी रंजन यादव टी.वी. के पास आया– देखा टी.वी. स्क्रीन पर बड़े अक्षरों में लिखा है –रामलाल जीत गए। फिर उसने खिड़की की ओर देखा। दूर हिन्दु–मुस्लिम गले मिल रहे थे। उसे सुकून मिला कि ''6 दिसबर 1992 वाला माहौल नहीं है। लोग अब परिपक्व हो गए हैं। वे किसी के बहकावे में नहीं है और न ही उन्मादी मस्तिष्क के हैं। यह लोकतंत्र के प्रति आस्था के अच्छे सबूतों में से थे। इसी का सपना वह देख रहा था। वह मन ही मन इस बात को लेकर भी खुष था कि –''राम–रहीम सेवा दल' का गठन कर उसने अच्छा किया। अब वह इसका विस्तार देष के हर कोने में करना चाहता है। तभी सेवा दल के कुछ साथी घर आए, जिसमें असलम अंसारी और उमेष भूमिहार थे। दोनों ने एक–एक लड्डू रंजन के मूंह में डाल दिये और उसे गोद में उठा लिए। दोनों के मुँह से एक ही साथ 'जय हिंद सर' निकले। और रंजन यादव उनदोनों को देखकर मुस्कुरा दिया। फिर बहुत देर तक उनकी आँखों में क्या देखता रहा .... टुकुर–टुकुर। लग रहा था कि उसकी आँखें कह रही हो .. बस ऐसे ही मिलकर रहना है। हलांकि, सुप्रिम कोर्ट ने अपने फैसले में यह भी कहा था कि पाँच एकड़ जमीन मुस्लिमों को भी सरकार को दूसरी जगह देनी होगी! पर, बौद्ध अभी चुप थे। उनका कहना था – '' यहाँ बाबरी मस्जिद नहीं; बावरी बौद्ध – विहार था...!!!''

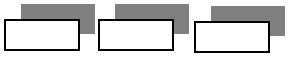

लेखक परिचय

डॉ. हरेराम सिंह

जन्मः बिहार के रोहतास जिलान्तर्गत काराकाट के करूप ईंगलिष गाँव में 30 जनवरी 1988 को।

चर्चित युवा आलोचक व कवि। वीर कुंवर सिंह, विष्वविद्यालय, आरा से पी.–एच.डी.।

परिचयः हंस, जनपथ, सृजना, फारवर्ड–प्रेस, नागफनी, रू, लौ, आजकल, अभ्यर्थना, युग–सरोकार, शोध–धारा, अर्जक, शोषित, आईना बिहार, विभाषा संसृति, संस्कार चेतना, पहचान, बुद्धवाणी, शेरषाह टाईम्स, नईधारा, सृजन–सरिता में कविताएँ, आलेख और पत्र प्रकाषित। कई राष्ट्रीय– अन्तराराष्ट्रीय सेमिनार व सम्मेलनों में सहभागिता।

ओबीसी साहित्य का दार्षिनक आधार (2015), डॉ. ललन प्रसाद सिंहः जीवन और साहित्य (2016), हिन्दी आलोचना का बहुजन दृष्टिकोण (2016), हिन्दी आलोचना के प्रगतिषील पक्ष (2017), और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह की वैचारिकी, संस्मरण एवं साक्षात्कार (2019), हिन्दी आलोचना का जनपक्ष (2019), आलोचना ग्रंथ, टुकड़ों में मेरी जिंदगी (2018), आत्म–कथात्मक उपन्यास, अधूरी कहानियाँ (2018), लघुकथा संग्रह, हाशिए का चाँद (2018), रात गहरा गई है! (2019), पहाड़ों के बीच से (2019) कविता संग्रह, अनजान नदी (2019), लोकतंत्र में हाषिए के लोग (2019) प्रकाषित।

बुद्ध विमर्ष, ओबीसी साहित्य के विविध आयाम, बहुजन साहित्य की प्रस्तावना, महिषासुरः मिथक और यथार्थ, साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्ष, राजेन्द्र यादव : जीवन और साहित्य आदि पुस्तकों में अध्याय लेखन।

'' 'गोदान' और 'छमाण आठ गुंठ' का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय पर शोध कार्य। ओबीसी साहित्य पर विषेष कार्य के लिए फारवर्ड प्रेस साहित्य व पत्रकारिता सम्मान (2013) प्राप्त।

सम्पर्क : ग्राम+पोस्ट– करूप ईंगलिष, भाया गोड़ारी, जिला– रोहतास (बिहार)–802214

म्उंपस. कतणीतेपदही08/हउंपसण्बवउ मो0–8298396621